

तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण में अवधारणाएँ

B.A HONS. POL. SCI. SEM.-4TH

100% COVERAGE ALL POSSIBLE Q'S

HINDI MEDIUM



THEORY

- ✓ AUTHOR'S BOOKS SIMPLIFIED
- ✓ TOP 09 Q WITH ANSWER.
- ✓ BASED ON NEP LATEST PATTERN
- ✓ HIGH SCORING EXAM NOTES

PRACTICE

- ✓ BEST WAY TO FORMAT AN ANSWER
- ✓ MAPS, FLOW CHART, DIAGRAMS
- ✓ INCLUDES TOPPER ANSWER SHEET
- ✓ PYQS SOLVED

STRICTLY BASED ON UGC CBCS NEP LATEST SYLLABUS

#YAHEEN AAEGA EXAM MEIN!

तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण में अवधारणाएँ

विषय वस्तु



इकाई - 1 : सामाजिक-आर्थिक संरचना

- (क) पूंजीवाद
- (ख) समाजवाद
- (ग) उपनिवेशवाद और नव-उदारवाद

इकाई - 2 : राष्ट्रवाद पर विमर्श

नागरिक और जातीय राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद का वैचारिक आधार (गांधी, माओ, फ्रान्टिस फैनन और अमिलकर कैब्राल)

इकाई - 3 : संविधानवाद

संवैधानिकता के विचार का विकास, उत्तर-औपनिवेशिक संवैधानिकतावाद

इकाई - 4 : संघवाद

ऐतिहासिक संदर्भ : संघ और परिसंघ: सत्ता के क्षेत्रीय विभाजन के आसपास बहस

इकाई - 5 : राज्य और शासन के प्रकार

पूंजीवादी, कल्याणकारी, लोकलुभावन और सुरक्षा राज्य

इकाई - 6 : निर्वाचन प्रणाली

परिभाषा और प्रक्रियाएं : चुनावी प्रणालियों के प्रकार

इकाई - 7 : पार्टी प्रणाली

राजनीतिक दलों के उद्भव का ऐतिहासिक संदर्भ, पार्टियों के प्रकार और पार्टी प्रणाली।



प्रश्न 1. पूंजीवाद को परिभाषित कीजिए। क्या आप इस बात से सहमत हैं कि वैश्वीकरण आधुनिक पूंजीवाद का प्रतिरूप है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

अथवा

“भूमण्डलीकरण ने राष्ट्र - राज्य के राजनीतिक प्रतिक्रियाओं को प्रभावित किया है”। विवेचना कीजिए।

उत्तर - परिचय



प्रारंभिक पुनर्जागरण के दौरान, 15वीं और 16वीं शताब्दी में पूंजीवाद की उत्पत्ति हुई। हालाँकि पूंजीवादी प्रणाली के प्रमाण प्राचीन सभ्यताओं में भी मिलते हैं। 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने पूंजीवाद को उत्पादन के एक प्रमुख तरीके के रूप में स्थापित किया, जिसकी विशेषता कारखाने में 'काम' और 'श्रम' का विभाजन था। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से, पूंजीवाद 19वीं और 20वीं शताब्दियों में दुनिया भर में फैल गया।

पूंजीवाद का आसान अर्थ :

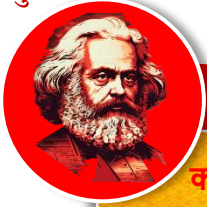
पूंजीवाद (Capitalism) समान्यता: उस प्रणाली या आर्थिक तंत्र को कहते हैं जिसमें उत्पादन के साधनों पर कुछ विशेष लोगों (पूंजीपतियों) का स्वामित्व होता है, जिसमें उत्पादन का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना होता है।



पूंजीवाद की परिभाषा विभिन्न विचारकों के अनुसार



एडम स्मिथ के अनुसार - स्मिथ ने 1776 में अपनी पुस्तक "द वेल्थ ऑफ नेशंस" में लिखा था कि पूंजीवाद प्रणाली में व्यापार तथा उद्योग मुख्य रूप से निजी व्यक्तियों या कंपनियों द्वारा लाभ के लिए संचालित होते हैं। इसमें प्रतिस्पर्धा और स्वतंत्र बाजार का प्रमुख महत्व होता है।



कार्ल मार्क्स के अनुसार - पूंजीवाद एक आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व पूंजीपतियों के पास होता है, जबकि श्रमिक वर्ग अपनी श्रम शक्ति को बेचने के लिए मजबूर होता है। यह प्रणाली शोषणकारी है और सामाजिक असमानता तथा वर्ग संघर्ष को जन्म देती है।



जी.डी.एच. कोल के अनुसार - पूंजीवाद लाभ के लिए उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अन्तर्गत उत्पादन के उपकरणों तथा सामग्री पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है। तथा उत्पादन मुख्य रूप से मजदूरों के श्रमिकों द्वारा किया जाता है।

आधुनिक पूंजीवाद :

आधुनिक पूंजीवाद, जहां निजी कंपनियाँ मुनाफा कमाने के लिए स्वतंत्र होती हैं, वैश्विक बाजारों में व्यापार और निवेश के माध्यम से और **अधिक लाभ कमा सकती हैं**। इसके परिणामस्वरूप, **वैश्वीकरण को बढ़ावा** मिलता है। आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में, कंपनियाँ अपने उत्पादों और सेवाओं को केवल अपने देश में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में बेचने का प्रयास करती हैं।

1. उदाहरण के लिए, एप्पल (Apple) : यह एक अमेरिकी कंपनी है जो अपने उत्पादों का डिज़ाइन अमेरिका में करती है, उनके घटक चीन और अन्य देशों में बनाती है, और उन्हें पूरे विश्व में बेचती है। इससे कंपनी की उत्पादन लागत कम होती है और उन्हें वैश्विक बाजार में अपनी उपस्थिति मजबूत करने में मदद मिलती है।



2. उदाहरण के लिए, एक कार कंपनी टोयोटा (Toyota) : इसके हिस्से विभिन्न देशों में बनाए जाते हैं - इंजन जापान में, सीटें थाईलैंड में, और इलेक्ट्रॉनिक्स जर्मनी में। फिर इन सभी हिस्सों को संयोजित कर अंतिम उत्पाद तैयार किया जाता है। इससे कंपनियों को सर्वोत्तम गुणवत्ता और लागत के लिए विभिन्न स्थानों पर उत्पादन करने की सुविधा मिलती है।





वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके ज़रिए दुनिया के लोग एक-दूसरे से जुड़ते हैं। इसमें विश्व राजनीति, अर्थशास्त्र, और संस्कृति शामिल है। वैश्वीकरण के ज़रिए, अलग-अलग देशों के बीच वस्तुओं, सेवाओं, निवेश, और तकनीक का आदान-प्रदान होता है। वैश्वीकरण के कारण ही, दुनिया भर में लोगों के जीवन स्तर में काफ़ी सुधार हुआ है।



आधुनिक पूंजीवाद का प्रतिरूप वैश्वीकरण :

हाँ, वैश्वीकरण को आधुनिक पूंजीवाद का प्रतिरूप माना जा सकता है। वैश्वीकरण और आधुनिक पूंजीवाद आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं, और दोनों एक-दूसरे को मजबूती प्रदान करते हैं।

1. आधुनिक पूंजीवाद के रूप में वैश्वीकरण :

वैश्वीकरण एक जटिल और व्यापक प्रक्रिया है जिसने वैश्विक समाज और अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित किया है। **आधुनिक पूंजीवाद** ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार किया है। इससे वैश्विक व्यापार में वृद्धि हुई है और विभिन्न देशों के बीच आर्थिक संबंध मजबूत हुए हैं। ऐसी **नव-उदारवादी नीतियाँ 1990** के दशक में दुनिया भर के अधिकांश देशों ने अपनाई थीं और यह नई विश्व अर्थव्यवस्था की प्रमुख विचारधारा बन गई।



2. बाजार का विस्तार :

वैश्वीकरण ने अंतर्राष्ट्रीय बाजारों को अभूतपूर्व रूप से बढ़ावा दिया है, जिससे **कंपनियों को वैश्विक स्तर** पर अपने उत्पाद बेचने और सेवाएं प्रदान करने का अद्वितीय अवसर मिला है। इसके परिणामस्वरूप, कंपनियों ने अपने व्यापारिक गतिविधियों को सीमाओं से परे फैलाने में सफलता प्राप्त की है। अब कंपनियां सिर्फ **स्थानीय बाजारों पर निर्भर नहीं रह गईं**, बल्कि वे दुनिया भर के बाजारों में अपने उत्पाद और सेवाएं प्रदान कर रही हैं।



3. तकनीकी विकास और वैश्वीकरण :

आधुनिक पूंजीवाद में तकनीकी विकास ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैश्वीकरण ने **प्रौद्योगिकी के प्रसार को तेज** कर दिया है, जिससे उत्पादन प्रक्रियाएं और अधिक कुशल और लाभदायक हो गई हैं। उदाहरण के लिए, इंटरनेट और संचार प्रौद्योगिकियों ने **व्यापारिक लेन-देन** को सरल और तेज़ बना दिया है।





4. वैश्विक आर्थिक संस्थाओं का वैश्विक विस्तार :

1990 के दशक में, वैश्विक आर्थिक संस्थाएँ जैसे कि **विश्व बैंक और IMF** (अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) ने कुछ खास सिद्धांतों को बढ़ावा दिया। इन सिद्धांतों को **"वाशिंगटन कांसेंसस"** कहा गया, और इसमें शामिल थे- स्थायित्व, निजीकरण, उदारवाद। इन नीतियों के कारण, नव-उदारवादी **पूँजीवाद दुनिया के उन देशों में भी फैल गया, जो पहले इनसे दूर थे।**



भूमण्डलीकरण का राष्ट्र - राज्य के राजनीतिक प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव :

1 राज्य की संप्रभुता का हास :

वैश्वीकरण के दौर में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं, परा-राष्ट्रीय संगठनों और वैश्विक दबाव समूहों के उदय ने राज्यों की नीति-निर्माण क्षमताओं को कमजोर कर दिया है। **यू.एन., WTO, IMF जैसी संस्थाओं** ने राज्यों की आर्थिक और सामाजिक नीतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक आंदोलनों और गैर-सरकारी संगठनों ने भी राष्ट्रीय नीतियों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया है, जिससे राज्यों को अपने नागरिक समाज और वैश्विक मांगों के बीच संतुलन बनाना पड़ा है।

2 आर्थिक स्वायत्तता और वैश्वीकरण :

किनिची ओहमे के अनुसार, राष्ट्र-राज्य आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करने में अप्राकृतिक और दुष्क्रियाशील इकाई बन गया है। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और वित्तीय बाजारों के प्रसार ने राज्यों की आर्थिक नीतियों पर नियंत्रण को कमजोर कर दिया है।

3 राजनीतिक और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव :

सुजान स्ट्रेज ने बताया है कि राज्य का घटता प्राधिकार राजनीतिक और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव का कारण बना है। राज्य अब विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय नेटवर्क्स और सहकारिताओं का हिस्सा बन गया है, जिससे उनकी पारंपरिक भूमिका और अधिकारक्षेत्र में कमी आई है।

4 तकनीकी विकास और राज्य की भूमिका :

रोबर्ट गिल्पिन के अनुसार, वैश्वीकरण का प्रभाव तकनीकी विकास का परिणाम है। तकनीकी विकास ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और व्यापार को बदल दिया है, जिससे राज्य की भूमिका भी बदल गई है। राज्यों ने इन तकनीकी परिवर्तनों के अनुसार अपनी नीतियों को अनुकूलित किया है।

5 वैश्वीकरण का रूपांतरणवादी दृष्टिकोण :

डेविड हेल्ड और एंथोनी एम्सग्रिव के अनुसार, वैश्वीकरण ने संस्थाओं, शक्ति के प्रयोग और वितरण को रूपांतरित किया है। वे मानते हैं कि वैश्वीकरण के तहत राज्य के कुछ क्षेत्रों में शक्तिशाली बनने और कुछ क्षेत्रों में प्राधिकार खोने की संभावनाएँ होती हैं।



मूल्यांकन

प्रारंभिक पुनर्जागरण से शुरू होकर 18वीं शताब्दी की **औद्योगिक क्रांति ने पूंजीवाद** को एक प्रमुख आर्थिक प्रणाली के रूप में स्थापित किया। 19वीं और 20वीं शताब्दियों में वैश्वीकरण ने इसे दुनिया भर में फैलाया, जिससे **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश** का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। **वैश्वीकरण और पूंजीवाद** गहराई से जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे को मजबूत करते हैं। वैश्वीकरण ने बाजारों का विस्तार किया है, तकनीकी विकास को बढ़ावा दिया है, और **वैश्विक आर्थिक संस्थाओं का प्रभाव** बढ़ाया है। इसने राज्यों की संप्रभुता को चुनौती दी है और उनकी आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं में बदलाव लाया है। आधुनिक पूंजीवाद ने तकनीकी विकास और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से वैश्विक आर्थिक संबंधों को मजबूत किया है, जिससे **वैश्विक बाजार और कंपनियाँ आपस में अधिक गहराई से जुड़ी हुई हैं।**

निष्कर्ष

अंततः हम यह कह सकते हैं कि वैश्वीकरण आधुनिक पूंजीवाद का ही प्रतिरूप है क्योंकि यह वैश्विक स्तर पर पूंजी, वस्तुओं, सेवाओं, और श्रम के मुक्त प्रवाह को बढ़ावा देता है। इनसे पूंजीवादी सिद्धांतों का वैश्विक प्रसार होता है, जिससे वैश्वीकरण और पूंजीवाद आपस में जुड़ जाते हैं।



प्रश्न 2 - पूँजीवाद के उदय और विकास पर चर्चा कीजिए।

उत्तर - परिचय

पूँजीवाद एक जटिल और गतिशील आर्थिक प्रणाली है जिसने कई देशों में **आर्थिक विकास और प्रगति को बढ़ावा** दिया है। जिसमें उत्पादन के साधन पर निजी स्वामित्व होता है। इसका मुख्य **उद्देश्य मुनाफा कमाना** होता है। पूँजीवाद व्यवस्था औद्योगिक युग की देन है, जिसकी उत्पत्ति मध्यकाल के सामंतवाद के पतन के बाद हुई तथा विभिन्न चरणों के माध्यम से इसका विकास विभिन्न देशों में हुआ।



पूँजीवाद : पूँजीवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधनों कारखानों आदि सभी पर पूँजीपतियों का एकमात्र अधिकार होता है तथा जिसके अंतर्गत वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन का अधिकार किसी निजी व्यक्ति के हाथ में होता है उसे **पूँजीवाद** कहते हैं।

विभिन्न विचारकों के अनुसार पूँजीवाद

एडम स्मिथ

एडम स्मिथ को आधुनिक **पूँजीवाद का जनक** कहा जाता है। इन्होंने अपनी पुस्तक "**द वेल्थ ऑफ नेशंस**" में, स्वतंत्र बाजार और व्यक्तिगत स्वार्थ सामूहिक समृद्धि को बढ़ावा दिया है। उन्होंने अदृश्य हाथ (Invisible Hand) के सिद्धांत को प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि व्यक्तिगत हितों की खोज से सामाजिक लाभ होता है।



मैक्स वेबर

मैक्स वेबर ने पूँजीवाद के विकास को सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से देखा। अपनी पुस्तक "**प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म**" में, वेबर ने तर्क दिया कि प्रोटेस्टेंट धर्म, विशेषकर कैल्विनिज्म, ने पूँजीवादी विचारधारा के विकास को प्रोत्साहित किया।



व्यावहारिक
रूप में
पूँजीवाद का
स्वरूप



वेतन मजदूरी : लोग अपने श्रम के बदले में वेतन पाते हैं। बंधुआ मजदूरी की जगह वेतन आधारित कामकाज होता है।

सीमित नियंत्रण : पूँजीवाद में आर्थिक गतिविधियों पर सरकार का सीमित नियंत्रण होता है।

निजी स्वामित्व : पूँजीवाद में उत्पादन की संपत्तियों पर स्वामित्व होता है।

लाभ : पूँजीवाद अधिकतम लाभ के लिए अधिकतम परिश्रम से जुड़ा है।

पूँजीवाद के उदय और विकास

उदय

- पूँजीवाद मध्यकाल यूरोप में शुरू हुए आधुनिकता के दौर का परिणाम है। पूँजीवाद का उदय और विकास कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारकों का परिणाम है। पुनर्जागरण ने धार्मिक पारंपरिकता का विरोध कर वैज्ञानिक स्वभाव को बढ़ावा दिया एवं प्रबोधन काल ने अनुभवजन्य ज्ञान, तर्क, और व्यक्तिवाद को महत्व दिया, जिससे पूँजीवाद के मूल्यों को प्रोत्साहन मिला।
- प्रोटेस्टेंट सुधार ने चर्च के पारंपरिक प्राधिकार को चुनौती दी और व्यक्तिवाद तथा उद्यमशीलता को बढ़ावा दिया। वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांतियों ने आधुनिक विज्ञान, तकनीकी विकास और बड़े पैमाने पर उत्पादन को संभव बनाया।
- सामंतवाद का पतन और शहरीकरण ने बाजार और व्यापार के केंद्रों का विकास किया। सौ साल के युद्ध ने सामंती शक्ति को कमजोर कर राजाओं की सत्ता को मजबूत किया, जिससे पूँजीवाद राज्य का विकास हुआ। कुलीन वर्ग और नई आर्थिक संगठन ने पारंपरिक कृषि व्यवस्था को बदलकर पूँजीवाद आर्थिक संगठन को स्थापित किया।

विभिन्न चरणों में पूँजीवाद का विकास

1. **पूर्व-प्रतिस्पर्धी या व्यापारिक चरण (1500-1800)** : 1500 से 1800 के बीच, यूरोपीय व्यापारियों ने एशिया, अफ्रीका, और दक्षिण अमेरिका में व्यापारिक मार्गों पर एकाधिकार जमाने की कोशिश की। वे सोना, मसाले, और गुलामों के लिए इन क्षेत्रों में आए। जहां यूरोपीय व्यापारियों ने इन क्षेत्रों के संसाधनों को अपने देशों में औद्योगिक क्रांति के लिए स्थानांतरित किया, ये व्यापारिक गतिविधियों को पूँजीवाद विकास को दर्शाती है।
2. **औपनिवेशिक दौर में पूँजीवाद (1800-1950)** : 1800 से 1950 के बीच, यूरोपीय देशों ने एशिया, अफ्रीका, और अमेरिका के क्षेत्रों पर शासन किया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीवाद का विकास हुआ और उपनिवेशों में भारी निवेश हुआ। इस निवेश का उद्देश्य मुनाफाखोरी और संसाधनों पर नियंत्रण था।
3. **नव-औपनिवेशीकरण (1950-1970)** : नव-औपनिवेशीकरण के तहत, बहुराष्ट्रीय निगमों और वैश्विक संस्थाओं के माध्यम से विकासशील देशों का शोषण किया गया और पूँजीवाद देशों को बढ़ावा दिया। पश्चिमी देश तकनीकी रूप से पिछड़े तीसरी दुनिया के देशों को यंत्र, उपकरण, बेचकर लाभ कमाते रहे।

4. वैश्वीकरण (1970-वर्तमान) : 1970 के बाद से, वैश्वीकरण के दौर में पूँजीवाद का नए तरीके से विकास हुआ। वैश्विक बाज़ारों और आर्थिक नीतियों के माध्यम से पूँजी का स्थानांतरण बढ़ा। वैश्वीकरण ने पूँजीवाद व्यवस्था को एक नई दिशा दी, जिसमें श्रम और पर्यावरण से जुड़े कानूनों का समझौता किया गया।

निष्कर्ष

पूँजीवाद का उदय एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में आधुनिक युग के दौरान सामंतवाद के पतन के बाद शुरू हुआ। पुनर्जागरण, वैज्ञानिक व औद्योगिक क्रांति, प्रबोधन एवं सुधारवादी आंदोलन जैसी गतिविधियों ने पूँजीवाद के विकास में योगदान दिया। साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक काल ने इसे और गति दी। शीत युद्ध के बाद, पूँजीवाद ने नव-उदारवादी आर्थिक सिद्धांतों के साथ वैश्विक रूप धारण किया।



प्रश्न 3 – समाजवाद से आप क्या समझते हैं ? समाजवाद के उत्थान और पतन के कारणों का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिये।

उत्तर – परिचय

विश्व में तुलनात्मक दृष्टिकोण से समाजवाद का उदय पूंजीवादी व्यवस्था के विकल्प के रूप में एक आर्थिक व्यवस्था की तरह हुआ, जिसके विकास के चरणों में मार्क्सवाद, लेनिनवाद, माओवाद इत्यादि को समझा और परखा गया, इसका प्रमुख उद्देश्य और समानता वाले समाज का निर्माण करना था, किन्तु शुरुआती सफलता के बावजूद, सोवियत संघ की समाजवादी प्रणाली अपनी आंतरिक कमजोरियों और बाहरी चुनौतियों के कारण विफल हो गई।

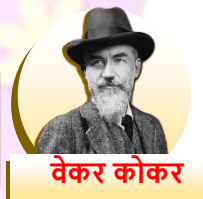


समाजवाद

समाजवाद आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं में से एक है, जिसमें उत्पादन के संसाधनों का नियंत्रण सामूहिक या सरकारी स्वामित्व पर आधारित होता है। यह सामाजिक-आर्थिक दर्शन के साथ-साथ राजनैतिक सिद्धांत और सामाजिक आंदोलन भी है।

विचारकों के अनुसार समाजवाद :-

“समाजवाद वह नीति या सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य एक लोकतान्त्रिक केन्द्रीय सत्ता द्वारा प्रचलित व्यवस्था की अपेक्षा धन का श्रेष्ठ कर (Tax) वितरण और उसके अधीन रहते हुए धन का श्रेष्ठतर उत्पादन करना है।”



“समाजवाद का अभिप्राय संपत्ति के सभी आधारभूत साधनों पर नियंत्रण से है। यह नियंत्रण समाजवाद के किसी एक वर्ग द्वारा न होकर स्वयं समाज के द्वारा होगा और धीरे-धीरे व्यवस्थित ढंग से स्थापित किया जाएगा।”



समाजवाद के उत्थान के प्रमुख कारण

पश्चात राजनीतिक चिंतन में समाजवाद	यूटोपियन समाजवाद	वैज्ञानिक समाजवाद
इसके अंतर्गत समाजवाद की पहचान प्लेटो, सुकरात जैसे राजनीतिक चिंतकों से जुड़ी है, प्लेटो की रचना “द रिपब्लिक” (380ईपू) में आदर्श राज्य में समाजवाद को शामिल किया गया।	कार्ल मार्क्स द्वारा समाजवादियों के लिए “यूटोपियन” शब्द का प्रयोग किया गया। यह समकालीन वास्तविकता की आलोचना द्वारा शोषणमुक्त समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने से संबंधित है।	कार्ल मार्क्स व एंजिल्स द्वारा प्रतिपादित समाजवादी विचारधारा से ही “वैज्ञानिक समाजवाद” की उत्पत्ति होती है, इनके “साम्यवादी घोषणा-पत्र” में सामाजिक वर्ग संघर्ष को दर्शाया गया है।



समाजवाद के उत्थान के प्रमुख कारण

समाजवाद का उदय और विकास **व्यक्तिवादी और राजतंत्रिक व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिक्रिया** के रूप में हुआ, जो प्राचीन समय से ही समानता और न्यायपूर्ण व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण रहा है, जिसके उत्थान के चरणों की व्याख्या निम्नानुसार है -

1. पश्चात राजनीतिक चिंतन में : इसमें समाजवाद का उत्थान की शुरुआत प्लेटों के विचारों से होती है, जिसमें प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य के प्रथम दो वर्गों, शासक तथा सैनिक वर्ग के लिए संपत्ति और परिवार का निषेध किया।

- प्लेटो ने **"द रिपब्लिक"** (380 ईसा पूर्व) में संपत्ति और परिवार की समाप्ति का विचार दिया।
- सर थामस मूर की **"यूटोपिया"** (1516) ने निजी संपत्ति की समाप्ति और समान अधिकार की वकालत की।
- **फ्रांसीसी (1789)** और **औद्योगिक क्रांतियों** के बाद, समाजवाद समानता और सहयोग पर आधारित समाज के रूप में उभरा।

2. यूटोपियन समाजवाद में : समाजवाद का उत्थान 19वीं सदी में हुआ, जिसे जेरोम ब्लांकी ने अपनी रचना **"हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनमी"** (1839) में विस्तार से वर्णित किया। इस समाजवादी धारा के मुख्य प्रवर्तकों में **रोबर्ट ओवेन, चार्ल्स फूरिये, और सेंट सिमोन** प्रमुख थे।

- 19वीं सदी के दौरान के राजनीतिक चिंतकों समाज सेवक के रूप में **व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुसार सुविधा प्राप्त करने का विचार** दिया गया।
- **ब्रिटिश समाजवाद के पिता "रॉबर्ट ओवेन"** (1771-1858) एक सफल उद्योगपति होने के साथ ही समाज सेवक तथा सुधारक थे, जिन्होंने अपनी **"ए न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी"** (1813) में समाज से जुड़े विचारों को प्रस्तुत किया।



3. वैज्ञानिक समाजवाद में : समाजवाद का उत्थान यूटोपियन समाजवाद से वैज्ञानिक समाजवाद तक एक विकास की प्रक्रिया थी, जिसमें **नैतिक और आदर्शवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण** की ओर प्रगति हुई।

- इस दौरान **कार्ल मार्क्स** और **एंगिल्स** के कार्यों ने समाजवाद को एक व्यवस्थित सिद्धांत के रूप में स्थापित किया, जिसने वैश्विक स्तर पर श्रमिक आंदोलनों और सामाजिक सुधारों को प्रेरित किया।
- यूटोपियन समाजवादियों द्वारा आदर्श समुदायों की स्थापना के बारे में सोचा जिसमें आर्थिक समानता और सामाजिक भेदभाव को मिटाने पर जोर दिया जिससे समाजवाद को प्रोत्साहन मिला।

उपरोक्त कारणों ने समाजवाद को विभिन्न चरणों के माध्यम से आगे बढ़ाने में सहयोग किया, जिसमें प्रमुख समाजवादियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही।



सोवियत संघ की स्थापना 1917 की रूसी क्रांति के साथ हुई जिसमें जार के शासन को हटा हटाकर समाजवाद स्थापित किया गया, जिसके लिए जिम्मेदार घटनाएं निम्नानुसार है –

1. समाजवादी पृष्ठभूमि : रूस में राजतन्त्र व्यवस्था के समय **मजदूरों और किसानों का आर्थिक शोषण** होता था, किसानों से अधिक कर (Tax) लिया जाता था, जिससे मजदूरों और किसानों में विद्रोह की भावना जागृत हुई, जिसने सोवियत संघ में **समाजवादी विचारधारा** को बढ़ावा दिया।



2. तानाशाही शासन का विरोध : निरंकुश राजतन्त्र के कारण नागरिकों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता था। **जार निकोलस-1** के शासनकाल में यह निरंकुशता अपने चरम पर पहुँच गई जिससे असंतोष और उग्र हो गया। 1905 की रूसी श्रमिकों पर गोली बरसाने की घटना ने जार के विरुद्ध प्रदर्शन को शुरू किया।



3. 1917 की क्रांति : सोवियत संघ रूस में जार के तानाशाही शासन के विरोध में फरवरी 1917 और अक्टूबर 1917 में महत्वपूर्ण समाजवादी क्रांतियाँ हुई, जिसके कारण राजतन्त्रीय व्यवस्था को हटाकर समाजवादी सरकार को स्थापित किया गया।



4. बोल्शेविक पार्टी की भूमिका : इस पार्टी द्वारा सोवियत संघ में समाजवाद को बढ़ाने में केन्द्रीय भूमिका निभाई गई, जिसके प्रमुख नेता **व्लादिमिर लेनिन** द्वारा **“विश्व के मजदूरों एक हो जाओ”** का नारा दिया गया।



उपरोक्त कारणों के माध्यम से समाजवाद का सोवियत संघ में उत्थान हुआ, जिसके प्रचार के लिए समाजवादी नेताओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही किन्तु यह द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) के बाद से अपनी आंतरिक कमजोरियों और उदारवादी नीतियों के स्वरूप अपने पतन की ओर आगे बढ़ा।



समाजवाद के पतन के प्रमुख कारणों का आलोकचनात्मक विश्लेषण

1. यूटोपियन व वैज्ञानिक समाजवाद में कमी : इनके अन्तर्गत समाज के व्यक्तियों तक उसकी क्षमतानुसार सुविधा पहुंचाने के प्रयास को वास्तविक रूप से पहुँचने में कठिनाई हुई तथा आर्थिक सुधारों और राजनीतिक प्रणालियाँ असफल रही जिसके परिणामस्वरूप इसके कार्यान्वयन में कमी आई और लोगों के बीच समाजवाद के प्रति आकर्षण कम हुआ, जिसने समाजवाद को कमजोर किया।

2. धर्म के प्रति झुकाव : सोवियत संघ में लोगों के मध्य मार्क्सवादी विचारधारा ने आध्यात्मिक सोच को लगभग समाप्त कर दिया था, किन्तु बाहरी दुनियाँ से संपर्क के कारण लोगों का अन्य धर्मों के साथ संपर्क बढ़ा जिससे उनमें धार्मिक लगाव बढ़ा जिसने मार्क्सवादी अथवा समाजवादी सोच को फिर से समाप्त कर दिया।

3. तानाशाही शासन : समाजवाद में संसाधनों का उचित तरीके से प्रयोग सभी के लिए नहीं किया जा सका, जिसके कारण इसकी प्रणालियों ने तानाशाही और अत्यधिक नियंत्रण जैसी स्थितियों का सामना किया, तथा लोगों में न्याय सही से नहीं मिल पाया, जिस कारण से लोगों में समाजवाद के प्रति विश्वास और समर्थन में कमी आई।

4. लोकतंत्र की कमी : समाजवाद में संसाधनों पर सरकारी नियंत्रण होता है, जिसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कमी, सरकार का अत्यधिक नियंत्रण और राजनीतिक समूहों पर प्रतिबंध तथा सूचनाओं पर सरकारी अधिकार होता है, जिससे लोकतंत्र की कमी होती है, जिस कारण से जनता के भीतर समाजवाद के प्रति लगाव में कमी हुई और यह पतन की ओर आगे बढ़ा।

6. सोवियत संघ रूस में समाजवाद का कमी : सोवियत संघ रूस समाजवाद का सबसे बड़ा समर्थक था, जिसमें विभिन्न स्थितियों ने समाजवाद को प्रोत्साहित किया किन्तु **पेरेस्त्रोइका तथा ग्लासनोस्त** जैसी उदारवादी नीतियों, अत्यधिक सरकारी नियंत्रण, अत्यधिक सैन्य खर्च, नेतृत्व की कमजोरी, आदि ने समाजवाद को कमजोर किया।

निष्कर्ष

इस प्रकार पूंजीवाद के एक विकल्प के रूप में समाजवाद का उत्थान हुआ जिसने तानाशाही शासन तथा वर्ग संघर्ष को मिटाकर सामाजिक समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया किन्तु समाजवाद में अत्यधिक सरकारी नियंत्रण ने फिर से तानाशाही प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जिससे लोगों में समाजवाद के प्रति लगाव कम हुआ, जिससे समाजवाद का पतन हुआ।

प्रश्न 4 – उपनिवेशवाद को परिभाषित कीजिए। वि-उपनिवेशवाद के मुख्य कारणों का विवेचन कीजिए।

उत्तर – परिचय

उपनिवेशवाद एक प्रकार का **आर्थिक और सामाजिक** व्यवस्था है जिसमें एक देश दूसरे देश के अधीन होता है या उसका विशेषाधिकार बनता है। वि-उपनिवेशवाद उपनिवेशवाद के विरुद्ध होता है, जहां देश अपनी **स्वतंत्रता और सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध** रहता है। उपरोक्त दोनों कारकों ने इतिहास में विवादों और संघर्षों का केंद्र बनाया है। यह प्रक्रिया देशों के स्वायत्तता और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।



उपनिवेशवाद का अर्थ : **उपनिवेशवाद** एक प्रक्रिया है जिसमें एक राष्ट्र अपने आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक लाभ के लिए दूसरे क्षेत्रों का नियंत्रण करता है, जिसे वह औपनिवेश या उपनिवेश के रूप में जानता है। इस प्रक्रिया में, बाहरी राष्ट्र के संसाधनों का उपयोग और विकास किया जाता है।

उपनिवेशवाद की परिभाषा

उपनिवेशवाद (Colonialism) एक ऐसी प्रणाली है जिसमें एक देश या शक्ति दूसरे देश या क्षेत्र पर राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक नियंत्रण स्थापित करती है और उसे अपने लाभ के लिए शोषण करती है। इस प्रक्रिया में उपनिवेशित देश के संसाधनों, श्रम और बाजार का उपयोग उपनिवेशी देश की समृद्धि और शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है।

वि-उपनिवेशवाद का अर्थ : वह प्रक्रिया जिसके अंतर्गत औपनिवेशिक शक्तियों को उनके नियंत्रण वाले क्षेत्रों से हटाया जाता है, जिससे उपनिवेश को स्वतंत्रता तथा स्वशासन प्राप्त होता है, **वि-उपनिवेशवाद** कहलाता है।

वि-उपनिवेशवाद की परिभाषा

वि-उपनिवेशवाद वह अध्ययन है जो उपनिवेशवाद के बाद के देशों और समाजों पर इसके प्रभावों का विश्लेषण करता है। यह देखता है कि उपनिवेशवाद के बाद की दुनिया में संस्कृति, पहचान, और शक्ति संबंध कैसे बदलते हैं।

वि-उपनिवेशवाद के मुख्य कारणों का विवेचन

1. उपनिवेशवाद का कमजोर होना : उपनिवेशवाद के कमजोर होने से वि-उपनिवेशवाद का उत्थान हुआ क्योंकि इसने नए राष्ट्रों के लिए स्वतंत्रता और स्वायत्तता के प्रति रुचि उत्पन्न किया।



- उपनिवेशित क्षेत्रों में स्वतंत्रता की मांग बढ़ी, जिसने उन्हें वि-उपनिवेशवाद के समर्थन में आगे बढ़ने को प्रेरित किया। उनका आत्मविश्वास बढ़ा, जिसने उन्हें स्वतंत्रता और राष्ट्रीय गरिमा के लिए लड़ने की प्रेरणा दी।
- उन्होंने अपनी आत्मनिर्भरता की मांग की, और विदेशी हस्तक्षेप से मुक्ति प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया। अन्याय के खिलाफ आंदोलन बढ़े, जिससे स्वतंत्रता और मानवाधिकारों की रक्षा में सहायता मिली।

2. साम्राज्यवादी विरोधी आंदोलन : साम्राज्यवादी विरोधी आंदोलन ने वि-उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया। इसके माध्यम से उपनिवेशित क्षेत्रों में एकीकृत आंदोलन हुआ, जो विदेशी शासन के खिलाफ एक मजबूत आवाज उठाई।



- इसने निजीकरण की मांग को बढ़ाया और उपनिवेशित क्षेत्रों की अपनी आर्थिक नियंत्रण और स्वतंत्रता की मांग को बढ़ाया।
- इसके साथ ही, ये आंदोलन ने राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया और स्वतंत्रता की महत्वपूर्णता को सार्वभौमिक रूप से उजागर किया।

3. द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव : द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) वि-उपनिवेशवाद के बढ़ने में महत्वपूर्ण घटना था। इस युद्ध की अवधि में विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी आजादी की मांग की और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया।



- साम्राज्यवादी विरोधी आंदोलन ने विभिन्न उपनिवेशित क्षेत्रों में एकीकृत आंदोलन को उत्पन्न किया, जिसने उन्हें विदेशी शासन के खिलाफ मिलकर लड़ने की प्रेरणा दी।
- उदाहरण के लिए, इस दौरान भारत ने 1947 में ब्रिटेन से, फिलीपींस ने 1946 में संयुक्त राज्य अमेरिका के उपनिवेशों से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली।

4. महाशक्तियों पर आर्थिक बोझ : महाशक्तियों को अपने उपनिवेश बनाने में कई आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इनमें भारी आर्थिक बोझ, उच्च ऋण, आर्थिक असमानता, आर्थिक विकसिती की कमी, और अस्थिरता और आर्थिक मंदी शामिल थी।



- ये समस्याएँ महाशक्तियों को उनके उपनिवेशों को समृद्धि और समानता के मार्ग पर ले जाने के लिए चुनौती प्रदान करती थीं।
- उदाहरण के लिए, फ्रांस द्वारा 1954 में अपने उपनिवेश देश वियतनाम को मुक्त कर दिया गया।

5. स्वतंत्रता के लिए संघर्ष : इसने उपनिवेश को समाप्त कर वि-उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया। इसका कारण था कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रों ने अपनी आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता के लिए विद्रोह किया, जिससे वे उपनिवेशी शासन से मुक्ति प्राप्त कर सकें।



- इस प्रकार, स्वतंत्रता की मांग ने उपनिवेश को कमजोर किया और उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया तथा इन संघर्षों ने 1960 तक कई अफ्रीकी उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहयोग किया।
- 1970-1974 तक पुर्तगाली उपनिवेशों की समाप्ति, 1975 से 1991 तक सोवियत संघ का विघटन।

निष्कर्ष

उपनिवेश के आर्थिक दबाव, स्वतंत्रता संघर्ष, और साम्राज्यवादी आंदोलनों से निपटकर देशों ने वि-उपनिवेशवाद को बढ़ाया। इससे स्वतंत्रता और विकास में मदद मिली।

प्रश्न 5 – राष्ट्रवाद की गांधीवादी धारणा को राष्ट्रवाद के अन्य लेखों से क्या अलग बनाता है?

उत्तर – परिचय

महात्मा गांधी एक प्रमुख राष्ट्रवादी विचारक थे, जिन्होंने अपने अद्वितीय संघर्ष में **सत्य, अहिंसा, और सामंजस्य** के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता के लिए लड़ा। उन्होंने राष्ट्रवाद को **समाज सुधारक और धार्मिक दृष्टिकोण** से भी अपनाया। उनके राष्ट्रवादी विचारों के अनुसार, राष्ट्र समृद्धि, सामाजिक न्याय, और आत्मनिर्भरता के माध्यम से विकसित होता है। गांधीजी के विचारों में **सत्य, अहिंसा, और सामंजस्य** के महत्व को बल दिया गया, जो उनके राष्ट्रवाद को अन्य लेखों से अलग बनाता है।



राष्ट्रवाद की गाँधीवादी धारणा : गांधी का राष्ट्रवाद विशेष था क्योंकि उन्होंने साधारण अकादमिक परिभाषाओं के बजाय अपने कार्यों में इसे प्रकट किया। उनका राजनीतिक दृष्टिकोण उनके व्यक्तिगत अनुभवों और प्रयोगों से प्रेरित था।

इससे, उनका राष्ट्रवाद गैर-सैद्धांतिक और क्रियात्मक बना, जिसने उन्हें पंच-दशकों के दौरान सत्य के साथ अपने आदर्शों को साकार करने में मदद की।



गांधी के राष्ट्रवाद के तीन प्रमुख तत्वों का संक्षेप में

1) स्वराज्य : गांधीजी के लिए स्वराज्य का अर्थ आत्म-नियंत्रण और स्वतंत्रता के साथ सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना था। उनका उद्देश्य था कि सत्ता लोगों द्वारा नियंत्रित हो, जिससे समाज में स्वतंत्रता और समानता का सम्मान किया जा सके।

2) सांप्रदायिक सद्भाव : गांधीजी के अनुसार, राष्ट्र के विकास और समृद्धि में सांप्रदायिक एकता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। उन्होंने विविधता और सहिष्णुता के माध्यम से ही एक समृद्ध और एकत्रित समाज बनाने की बात की।

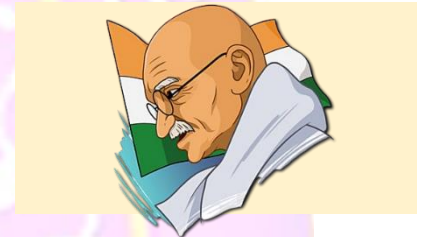
3) अहिंसा : गांधीजी के लिए अहिंसा का मार्ग सबसे महत्वपूर्ण था। उनका मानना था कि अहिंसा हिंसा और असहिष्णुता के खिलाफ एक प्रमुख सामाजिक और आर्थिक शक्ति है। उन्होंने अहिंसा का प्रयोग सत्य, प्रेम, और सद्भावना की शक्ति को प्रकट करने के लिए किया।

गांधीजी के राष्ट्रवाद में उभरी विशेषताओं और धारणाओं का विवेचन करते समय एक साफ अंतर दिखाई देता है, जो उन्हें अन्य राष्ट्रवादों से अलग बनाता है।

1. **सामाजिक सद्भाव की प्रमुखता :** गांधीजी के राष्ट्रवाद में सामाजिक सद्भाव की महत्वपूर्णता को बहुत उच्चाधिकारित किया गया था। इसके लिए उन्होंने धर्म, जाति और समाज के विभाजक तत्वों के खिलाफ उत्कृष्ट विचार प्रस्तुत किए।



2. **अहिंसा का महत्व :** गांधीजी के राष्ट्रवाद में अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। उन्होंने विचार, कार्य और कार्य में अहिंसा के दर्शन के आधार पर अहिंसक साधनों के उपयोग की प्रोत्साहना की। इसका मतलब था कि स्वतंत्रता के लिए हिंसा का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि सत्य और अहिंसा के माध्यम से परिवर्तन लाना चाहिए।



3. **धर्मनिरपेक्ष समाज :** गांधीजी के राष्ट्रवाद में धर्मनिरपेक्षता की महत्वपूर्णता को बल मिला। उन्होंने सभी धर्मों के लिए समानता और सम्मान के सिद्धांत को प्रोत्साहित किया और धर्म से संबंधित विवादों के खिलाफ खरे खड़े होकर समाज को एकत्रित करने का प्रयास किया।



4. **गांधी का सांप्रदायिक सद्भाव :** गांधीजी का राष्ट्रवाद सांप्रदायिक सद्भाव की महत्वपूर्णता को मानता था, जिसे समाज में हाशिए पर रहने वाले लोगों को शामिल करने की सोच थी। उनका दृष्टिकोण यह था कि समाज का निर्माण विविधता और सहिष्णुता के माध्यम से होना चाहिए।



5. **सामाजिक जनसमूह का समावेश :** गांधीजी ने समाज के हर वर्ग और समुदाय को समावेशी रूप से संगठित करने का प्रयास किया, ताकि एक एकीकृत राष्ट्र का निर्माण हो सके और समृद्धि के साथ सभी को समान रूप से लाभ मिल सके।



6. **सभ्यता में राष्ट्र** : गांधी ने राष्ट्र को एक सभ्यता के रूप में देखा, जो विविध नस्लों और धर्मों के लोगों से समृद्ध है। उन्होंने सहिष्णुता और विविधता को प्रोत्साहित किया।
7. **जनता की सक्रियता** : गांधी के राष्ट्रवाद ने जनता को सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया, जिससे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण बदलाव आया।



निष्कर्ष

गांधीजी के राष्ट्रवाद में सामाजिक सद्भाव, अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता, और सांप्रदायिक सद्भाव के महत्व को बढ़ाया गया। उन्होंने समाज के एकता और सहयोग की महत्वपूर्णता पर जोर दिया।





प्रश्न 6 - संविधानवाद को परिभाषित करें और इसके ऐतिहासिक विकास का वर्णन कीजिए.

उत्तर – परिचय

संविधानवाद एक महत्वपूर्ण राजनीतिक सिद्धांत है जो आधुनिक राज्यों के संगठन और संचालन के लिए मौलिक आधार प्रदान करता है। इसका ध्यान रखते हुए, **संविधानवाद विभिन्न शासन की शाखाओं के बीच संतुलन** को स्थापित करता है और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करता है। यह राजनीतिक प्रणालियों की अधिकारिकता और संघवादी गतिशीलता के लिए महत्वपूर्ण है, जो एक संरचना वाले और सुरक्षित समाज के निर्माण में मदद करता है।



संविधानवाद का अर्थ : संविधानवाद एक राजनीतिक दर्शन अथवा दृष्टिकोण को दर्शाता है जो किसी राष्ट्र पर शासन करने के लिए संविधान के महत्व पर जोर देता है क्योंकि संविधान कानूनों और नियमों का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो किसी राष्ट्र की शासन व्यवस्था को समान रूप से संचालित करने में सहयोग करता है।

संविधानवाद की प्रमुख परिभाषाएं :-

- **जॉन लॉक के अनुसार,** - संविधानवाद में एक ऐसी सरकार शामिल है, जो संविधान की सीमा के भीतर काम करती, प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा करती है और जनता को बढ़ावा देती है।
- **जॉन मार्शल के अनुसार,** - अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने संविधान की व्याख्या न्यायिक समीक्षा के रूप में की, जो न्यायालयों को सरकारी कार्यों की संवैधानिकता की जांच करने का अधिकार देती है।



संविधानवाद का ऐतिहासिक विकास



प्राचीन उत्पत्ति

मध्यकालीन और पुनर्जागरण विकास

ज्ञानोदय और सामाजिक समझौता

आधुनिक संविधानवाद का गठन

1. प्राचीन उत्पत्ति : संविधानवाद की प्राचीन उत्पत्ति प्राचीन सभ्यताओं में खोजी जा सकती है। मेसोपोटामिया में हम्मुराबी की संहिता (लगभग 1754 ईसा पूर्व) ने कानूनों की एक श्रृंखला स्थापित की, जो न्याय और समानता के सिद्धांतों पर आधारित थी। प्राचीन ग्रीस में, एथेंस के नगर-राज्य ने संवैधानिक विचारों को आकार दिया।



- **5वीं शताब्दी ईसा पूर्व में एथेंस** में उभरी लोकतंत्र की प्रणाली ने नागरिक सहभागिता और कानून के शासन पर जोर देते हुए संवैधानिक शासन के प्रारंभिक रूपों को दर्शाया।
- **सोलोन** नामक प्रसिद्ध **एथेनियन संविधान** के द्वारा सुधारों और एथेंस की लोकतांत्रिक प्रणाली ने सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करने और नागरिक सहभागिता और कानून के शासन पर जोर देने का प्रयास किया।

2. मध्यकालीन और पुनर्जागरण विकास : मध्ययुगीन और पुनर्जागरण काल में संविधानवाद का महत्वपूर्ण विकास हुआ।

- **मैग्ना कार्टा (1215) :** इंग्लैंड के राजा जॉन द्वारा हस्ताक्षरित इस दस्तावेज ने शाही अधिकारों को सीमित किया और यह सिद्धांत स्थापित किया कि राजा भी कानून के अधीन है।
- **मॉडल संसद (1295) :** इंग्लैंड के राजा एडवर्ड प्रथम ने एक प्रतिनिधि सभा बुलाई, जिसमें न केवल कुलीन वर्ग बल्कि सामान्य लोग भी शामिल थे, जिससे प्रतिनिधि संस्थानों का विचार मजबूत हुआ।
- **गौरवशाली क्रांति और बिल ऑफ राइट्स (1689) :** इंग्लैंड में, राजा जेम्स द्वितीय के तख्तापलट के बाद, विलियम और मैरी ने बिल ऑफ राइट्स पर हस्ताक्षर किए, जिसने संसदीय सर्वोच्चता स्थापित की और शाही शक्तियों को सीमित किया।



3. ज्ञानोदय और सामाजिक समझौता : 17 वीं और 18वीं शताब्दी में बौद्धिक परिवर्तन की विशेषता वाले ज्ञानोदय युग और सामाजिक समझौता ने संविधानवाद के विकास पर गहरा प्रभाव डाला –

- **मॉन्टेस्क्यू :** अपने काम "द स्पिरिट ऑफ द लॉज" (1748) में, उन्होंने शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत प्रस्तुत किया, जो अत्याचार के खिलाफ सुरक्षा के रूप में कार्य करता है।



- **जॉन लॉक** : "टू ट्रीटीज ऑफ गवर्नमेंट" (1689) में, उन्होंने सामाजिक समझौता और प्राकृतिक अधिकारों पर जोर दिया, जिसमें व्यक्ति सरकार बनाने के लिए कुछ शक्तियों का त्याग करते हैं।
- **जीन-जैक्स रूसो** : "द सोशल कॉन्ट्रैक्ट" (1762) में, उन्होंने सामान्य इच्छा की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें वैध राजनीतिक सत्ता लोगों की सामूहिक इच्छा से उत्पन्न होती है।
- **अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियाँ** : ज्ञानोदय के सिद्धांतों ने अमेरिकी संविधान (1787) और फ्रांसीसी क्रांति (1789) के दौरान मनुष्य और नागरिक के अधिकारों के घोषणापत्र को प्रेरित किया, जिसमें व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं पर जोर दिया गया।

4. आधुनिक संघवाद का गठन : 19वीं सदी का संवैधानिक उभार हुआ जिस कारण से यूरोपीय राष्ट्रों ने लोकतांत्रिक सिद्धांतों और सरकारी सीमाओं वाले लिखित संविधान अपनाए।



- **प्रमुख संवैधानिक घटनाएँ** : जर्मनी (1871) में **बिस्मार्क का संविधान** अपनाया व मजबूत कार्यपालिका के साथ संघीय व्यवस्था अपनाई तथा जापान द्वारा **मीजी संविधान** ने पारंपरिक और पश्चिमी विचारों को मिलाकर संवैधानिक राजतंत्र स्थापित किया।
- **वैश्विक संवैधानिक विकास** : संयुक्त राष्ट्र (1945) और मानवाधिकार (1948) ने वैश्विक मानवाधिकार मानकों पर जोर दिया व द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लोकतांत्रिक शासन और मानवाधिकारों पर जोर देने वाले नए संविधानों का मसौदा तैयार किया गया।
- **20वीं सदी के नागरिक अधिकार आंदोलन** : इन आंदोलनों ने यूएस में नागरिक अधिकार आंदोलन ने संवैधानिक परिवर्तनों को प्रभावित किया। इन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य नस्लीय और लैंगिक असमानता के मुद्दों को उजागर करना तथा विस्तृत संवैधानिक अधिकारों में यहोगदान देना था।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संविधानवाद का विकास प्राचीन से लेकर आधुनिक समय तक विभिन्न व्यवस्थाओं को संवैधानिक स्वरूप देकर हुआ है, जिसने समाजों ने विभिन्न युगों में संविधानिक विचारों का विकास किया है, जो स्वतंत्रता, और उनके अधिकारों की समझ में मदद करता है।

प्रश्न 7 – एकात्मक प्रणाली का परीक्षण कीजिए। विस्तृत व्याख्या कीजिए कि यू. के. में एकात्मक प्रणाली कैसे काम करती है?

उत्तर – परिचय

एकात्मक प्रणाली (Unitary System) एक शासन प्रणाली है जिसमें सत्ता का प्रमुख केंद्र **केंद्रीय सरकार** होती है। इस प्रणाली में क्षेत्रीय या स्थानीय सरकारें केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित और नियंत्रित होती हैं। **विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शक्तियाँ केंद्रीय सरकार के पास** होती हैं, जो राष्ट्रीय स्तर पर सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेती है। उदाहरण के लिए, **यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस और बेल्जियम** एकात्मक शासन प्रणाली का प्रमुख उदाहरण है।



एकात्मक प्रणाली एक शासन प्रणाली है जिसमें संपूर्ण सत्ता का प्रमुख केंद्र केंद्रीय सरकार होती है। इस प्रणाली में स्थानीय या क्षेत्रीय सरकारें केंद्रीय सरकार द्वारा स्थापित और नियंत्रित होती हैं, इसका उद्देश्य एक संगठित और एकीकृत प्रशासन सुनिश्चित करना है, जिसमें केंद्रीय सरकार का सर्वोच्च अधिकार होता है।

हरमन फाइनर के अनुसार “एकात्मक सरकार वह है, जिसमें सभी शक्तियाँ और अधिकार एक केन्द्रीय सत्ता के पास होते हैं। एकात्मक सरकारों में केंद्र और उसके एजेंट कानूनी शक्ति से सर्वशक्तिमान है।”

ए.वी. डायसी के शब्दों में एकात्मकता ऐसे राजनीतिक संगठन का संकेत देती है, जिसमें “एक केन्द्रीय शक्ति नियमपूर्वक सर्वोच्च विधायी सत्ता का प्रयोग करती है।”

एकात्मक प्रणाली का परीक्षण

एकात्मक प्रणाली के लक्षण	एकात्मक प्रणाली के गुण
केंद्र सरकार के पास समस्त राजशक्ति होती है।	इसके अंतर्गत सभी शक्तियाँ केंद्र में शामिल होती है।
प्रदेश की सरकारें अपनी शक्तियाँ संविधान से प्राप्त नहीं करती है।	कानून और प्रशासन के क्षेत्र में एकरूपता पूरे देश के लिए एक से कानून लागू होते है।
संविधान में संशोधन की प्रक्रिया लचीली होती है।	केंद्र की सर्वोच्चता के कारण सरकार के पास परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की शक्ति।
न्यायपालिका की भूमिका शून्य होती है।	केंद्र सरकार द्वारा तत्काल निर्णय लिए जाते है।

यू. के. में एकात्मक प्रणाली की कार्यप्रणाली

यूनाइटेड किंगडम (यू.के.) की एकात्मक प्रणाली केंद्रीय सरकार के नियंत्रण और निर्देशन के तहत कार्य करती है। यू.के. में एकात्मक प्रणाली की कार्यप्रणाली को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:

- 1. केन्द्रीय संसद की सर्वोच्चता** : ब्रिटेन की संसद सर्वोच्च विधायी संस्था है, जो राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनाने का पूरा अधिकार रखती है। संसद द्वारा पारित किए गए कानून सारे देश में लागू होते हैं और सभी स्थानीय इकाइयाँ इनका पालन करने के लिए बाध्य होती हैं तथा केन्द्रीय संसद के पास किसी भी क्षेत्रीय या स्थानीय कानून को खत्म करने का अधिकार होता है।
- 2. केंद्रीय सरकार का नियंत्रण** : ब्रिटेन में एक ही सरकार तथा एक ही केन्द्र की व्यवस्था की गई है। स्थानीय शासन को कोई कानून बनाने का अधिकार नहीं है। केन्द्रीय सरकार का मुख्य कार्य नीतियों को बनाकर उन्हें लागू करना है। स्थानीय शासन को सारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई हैं, जिसका प्रयोग वे केन्द्रीय सरकार के परामर्श से ही कर सकते हैं।
- 3. विकेंद्रीकरण** : ब्रिटेन में कुछ क्षेत्रों को सीमित स्वायत्ता दी गई है जिन्हें कुछ विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया गया है किन्तु केन्द्रीय सरकार के पास अंतिम नियंत्रण और निगरानी का अधिकार होता है, केन्द्रीय सरकार द्वारा क्षेत्रीय सरकार की नीतियों पर हस्तक्षेप किया जा सकता है, जो एकात्मक प्रभाव को दर्शाता है।
- 4. न्यायिक प्रणाली** : ब्रिटेन में कानून सबसे ऊपर है, एवं न्यायिक प्रणाली केन्द्रीय स्तर पर संचालित होती है। जिसमें संसद का प्रभाव अधिक होता है, न्यायपालिका को यह अधिकार नहीं है कि वह संसद द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित कर सके, जो एकात्मक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।
- 5. किसी इकाई का गठन या समापन** : संसद के नियम के अंतर्गत किसी स्थानीय शासन की इकाई के गठन में संशोधन किया जा सकता है, या उसके अस्तित्व को ही समाप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष

यूनाइटेड किंगडम की एकात्मक प्रणाली में केंद्रीय सरकार सर्वोच्च है। संसद राष्ट्रीय कानून बनाती है और स्थानीय इकाइयाँ इसका पालन करती हैं। अन्य क्षेत्रीय शक्तियों को सीमित स्वायत्तता दी जाती है, पर अंतिम नियंत्रण और निगरानी केंद्रीय सरकार के पास होती है। न्यायिक प्रणाली भी संसद के कानूनों के तहत काम करती है।



प्रश्न 8 – संघीय व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? भारत और अमेरिका में संघवाद के विभिन्न पहलुओं की तुलना करें और उनमें अंतर करें।

उत्तर – परिचय

संघीय व्यवस्था में सत्ता का वितरण केंद्रीय और राज्य सरकारों के बीच होता है। **भारत और अमेरिका** इस व्यवस्था के प्रमुख उदाहरण हैं, लेकिन इनकी संघीय संरचनाओं में महत्वपूर्ण अंतर हैं। **भारत में केंद्र सरकार अधिक शक्तिशाली** है और विशेष परिस्थितियों में राज्यों पर हस्तक्षेप कर सकती है। **अमेरिका में राज्य**



सरकारों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त है और वे अपने कानून और नीतियाँ बना सकते हैं। संघीय सरकार का हस्तक्षेप सीमित है। अमेरिकी संविधान में संशोधन कठिन है।

संघीय व्यवस्था : संघीय व्यवस्था से तात्पर्य एक ऐसी शासन प्रणाली से है जिसमें सत्ता का वितरण एक केंद्रीय सरकार और राज्य या क्षेत्रीय सरकारों के बीच विभाजित होता है। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों की विविधताओं को ध्यान में रखते हुए एक संतुलित और समन्वित शासन स्थापित करना है।

संघीय व्यवस्था से संबंधित परिभाषाएं :-

- **डैनियल एलजोर के अनुसार**, "संघीय शासन, स्वशासन एवं सहभागी शासन है।"
- **डायसी के अनुसार**, "संघीय शासन प्रणाली में जनता की केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की इच्छा के मध्य सामंजस्य स्थापित किया जाता है क्योंकि उनकी इच्छा संघ के निर्माण की होती है, एकता के निर्माण की नहीं।"
- **मूरे फ़ोर्थ के अनुसार**, "संघ, राज्यों का राज्य है।"

- फेडरेलिज्म शब्द लैटिन भाषा के "**फ़ोएडस**" शब्द से बना है, जिसका अर्थ – आपसी समझौता है।
- प्रसिद्ध विचारक "**एलेक्जेंडर हैमिल्टन व जेम्स मेडिसन**" ने मिलकर "**The Federalist Paper**" (1788) का निर्माण किया।
- प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका के संघवाद का रूप में अधिक विस्तार हुआ, 1980 के दशक अमेरिकी राष्ट्रपति **रगिन** ने "**नव-संघवाद**" का नारा दिया।

भारत और अमेरिका, दोनों संघीय व्यवस्था को अपनाने वाले प्रमुख देश हैं, लेकिन इनकी संघीय संरचनाओं और कामकाज में कई महत्वपूर्ण अंतर हैं।

भारत में संघीय व्यवस्था

1. **सत्ता का वितरण**: भारतीय संविधान में तीन सूचियाँ हैं: केंद्रीय सूची, राज्य सूची, और समवर्ती सूची। इन सूचियों में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि कौन-कौन से विषय केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आते हैं।
2. **संविधान की स्थिति**: भारतीय संविधान को एक 'कठोर संविधान' कहा जाता है क्योंकि इसे बदलने के लिए एक विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जिसमें संसद के दोनों सदनों का बहुमत और राज्य विधानसभाओं की सहमति शामिल होती है।
3. **राज्यों की शक्ति**: भारतीय संघीय प्रणाली में केंद्र को अधिक शक्तिशाली माना जाता है। विशेष परिस्थितियों में केंद्र सरकार राज्य सरकारों पर हस्तक्षेप कर सकती है, जैसे कि राष्ट्रपति शासन (Article 356) के तहत।
4. **भाषाई और सांस्कृतिक विविधता**: भारत में राज्यों का गठन मुख्यतः भाषाई आधार पर हुआ है, जो संघीय ढांचे की विशेषता है।

अमेरिका में संघीय व्यवस्था

1. **संवैधानिक ढांचा**: अमेरिकी संविधान का दसवां संशोधन (Bill of Rights) संघीय सिद्धांतों की नींव रखता है, जिसमें कहा गया है कि जो शक्तियाँ संघीय सरकार को नहीं दी गई हैं, वे राज्यों और जनता के पास रहती हैं।
2. **सत्ता का वितरण**: अमेरिका में शक्तियाँ स्पष्ट रूप से संघीय सरकार और राज्यों के बीच विभाजित हैं। संघीय सरकार के अधिकार केवल उन्हीं विषयों तक सीमित हैं जो संविधान में दिए गए हैं, बाकी सभी अधिकार राज्यों के पास हैं।
3. **संविधान की स्थिति**: अमेरिकी संविधान भी एक 'कड़ा संविधान' है, लेकिन इसे संशोधित करना अपेक्षाकृत कठिन है। संशोधन के लिए संघीय स्तर पर एक जटिल प्रक्रिया अपनाई जाती है।

4. **राज्यों की शक्ति:** अमेरिकी संघीय प्रणाली में राज्य अधिक स्वायत्त होते हैं। वे अपने कानून, न्याय प्रणाली और यहां तक कि कर प्रणाली को भी संचालित कर सकते हैं। संघीय सरकार का हस्तक्षेप सीमित है।
5. **सांस्कृतिक विविधता:** अमेरिका में राज्यों का गठन ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक कारकों पर आधारित है, जो संघीय ढांचे को मजबूत करता है।

अमेरिका और भारत के संघवाद के बीच प्रमुख अंतर

1. **सत्ता संतुलन:** भारत में केंद्र सरकार अधिक शक्तिशाली है, जबकि अमेरिका में राज्य सरकारों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त है।
2. **संविधान का लचीलापन:** भारतीय संविधान में अधिक लचीलापन है और संशोधन प्रक्रिया थोड़ी आसान है, जबकि अमेरिकी संविधान में संशोधन करना कठिन है।
3. **संघीय हस्तक्षेप:** भारत में केंद्र सरकार के पास राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने की अधिक शक्ति है, जबकि अमेरिका में ऐसा हस्तक्षेप न्यूनतम है।
4. **प्रशासनिक ढांचा:** भारतीय संघीय व्यवस्था में अधिक केंद्रीकरण है, जबकि अमेरिकी संघीय व्यवस्था में विकेंद्रीकरण का अधिक महत्व है।

निष्कर्ष

भारत और अमेरिका दोनों संघीय प्रणाली के विभिन्न मॉडल प्रस्तुत करते हैं। भारत में केंद्र और राज्य के बीच अधिक केंद्रीकरण और नियंत्रण देखा जाता है, जबकि अमेरिका में राज्य अधिक स्वायत्त और स्वतंत्र हैं। ये अंतर दोनों देशों की ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए हैं।



प्रश्न 9 – अधिनायकवादी शासन क्या है? सत्तावाद और अधिनायकवादी शासन के बीच अंतर कीजिए।

उत्तर – परिचय

शासन का तात्पर्य उस प्रक्रिया और प्रणाली से है जिसके माध्यम से **समाज के नियम, नीतियाँ और निर्णय** निर्धारित और लागू किए जाते हैं। शासन की कई प्रणालियाँ होती हैं, जिनमें **लोकतंत्र, सत्तावाद और अधिनायकवादी शासन** प्रमुख हैं। प्रत्येक प्रणाली समाज और नागरिकों के जीवन को अलग-अलग तरीकों से प्रभावित करती है।



अधिनायकवादी शासन : यह एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली है जिसमें राज्य का समाज के सभी पहलुओं पर पूर्ण और निरंतर नियंत्रण होता है। यह आधुनिक तानाशाही का एक रूप है जिसमें सत्ता एक ही पार्टी में केंद्रित होती है। (सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ, ग्रेटर जर्मन रीच)

- **पूर्ण नियंत्रण**: राज्य का सभी क्षेत्रों पर, जिसमें व्यक्तिगत जीवन भी शामिल है, पूर्ण और निरंतर नियंत्रण होता है।
- **व्यापक प्रचार**: राज्य द्वारा व्यापक प्रचार और प्रोपेगैंडा का उपयोग किया जाता है, और मीडिया पर पूर्ण नियंत्रण होता है।
- **दमन और आतंक**: राज्य की आलोचना या विरोध करने वालों को सख्त सजा दी जाती है, जिसमें आतंक और हिंसा का सहारा लिया जाता है।

सत्तावादी शासन : सत्तावादी शासन एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली है, जिसमें सत्ता का केंद्रीकरण कुछ व्यक्तियों या एक छोटे समूह के हाथों में होता है। इस प्रकार की शासन प्रणाली में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राजनीतिक स्वतंत्रता सीमित होती है। (चीन, जॉर्डन, तुर्की)

- **सत्ता का केंद्रीकरण**: सत्ता का एक केंद्र में संकेन्द्रण होता है, और यह अक्सर एक नेता या पार्टी के हाथ में होती है।
- **राजनीतिक स्वतंत्रता का अभाव**: राजनीतिक स्वतंत्रता सीमित होती है और विपक्ष को दबाया जाता है।
- **प्रचार और नियंत्रण**: मीडिया और संचार के साधनों पर सरकार का नियंत्रण होता है, और उनका उपयोग अपने एजेंडे को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है।

सत्तावाद और अधिनायकवादी शासन के बीच अंतर

अधिनायकवादी और सत्तावादी शासन के बीच मुख्य अंतरों को विस्तारपूर्वक दर्शाने के लिए हम निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रख सकते हैं :-

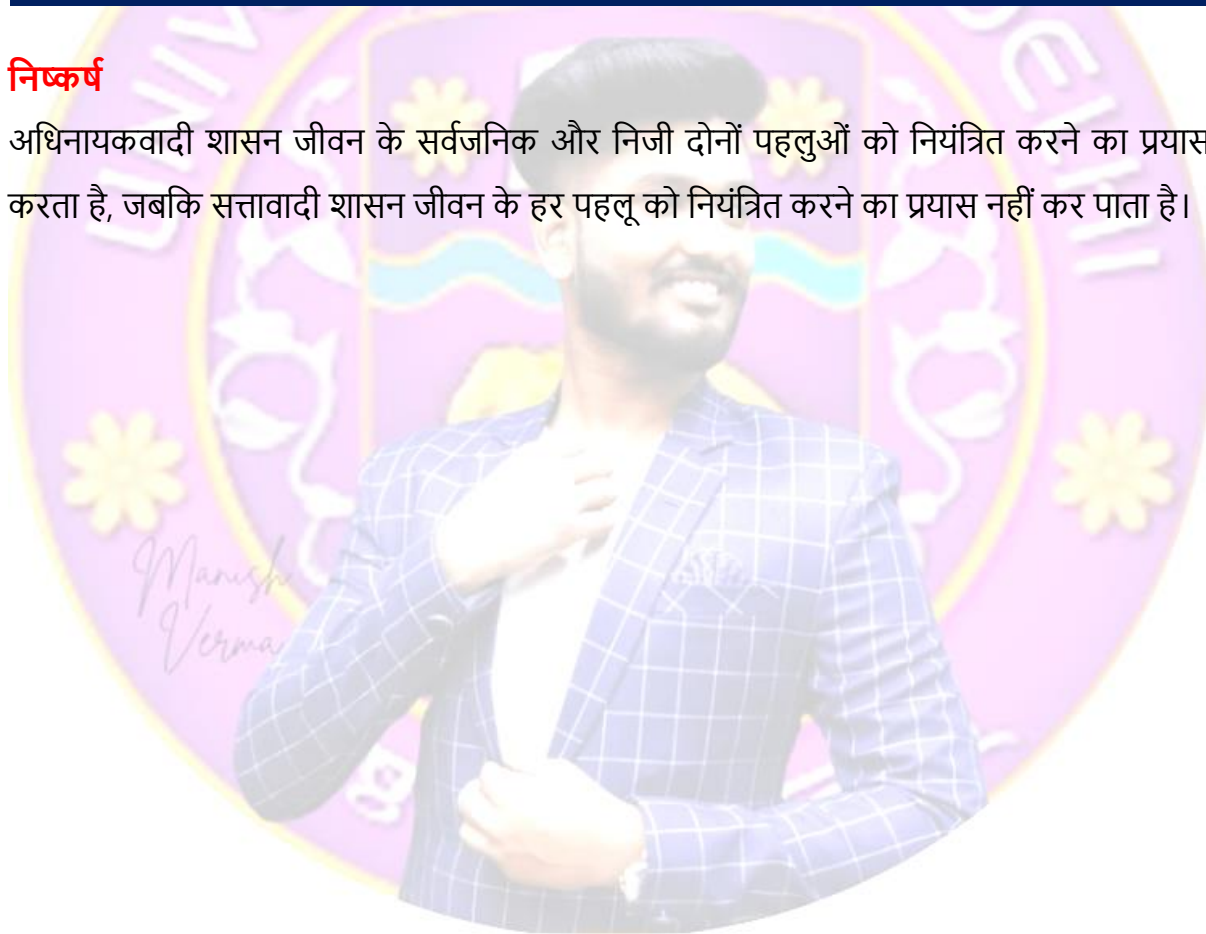
1. **वैधता की स्थिति** : अधिनायकवादी शासन में, वैधता की स्थिति अक्सर सरकार के पक्ष में होती है, जबकि सत्तावादी शासन में, वैधता की स्थिति अधिक निष्पक्ष होती है और न्याय प्रणाली के माध्यम से निर्धारित की जाती है।
2. **सत्ता की सीमाएं** : अधिनायकवादी शासन में, सत्ता की सीमाएं सरकार द्वारा अनियंत्रित होती हैं, जबकि सत्तावादी शासन में, सत्ता की सीमाएं संविधान या कानूनों द्वारा निर्धारित होती हैं।
3. **राजनीतिक दलों की स्थिति** : अधिनायकवादी शासन में, एक ही दल या व्यक्ति की सत्ता की संप्रभुता होती है, जबकि सत्तावादी शासन में, कई राजनीतिक दलों की संघर्षमय स्थिति होती है।
4. **विचारधारा की स्थिति** : अधिनायकवादी शासन में, सरकार अक्सर अपने विचारों और धाराओं को प्रोत्साहित करती है, जबकि सत्तावादी शासन में, विचारधारा की स्वतंत्रता अधिक होती है और विभिन्न विचारों का समर्थन किया जाता है।
5. **न्यायपालिका की स्थिति** : अधिनायकवादी शासन में, न्यायपालिका की स्थिति अक्सर सरकार के पक्ष में होती है, जबकि सत्तावादी शासन में, न्यायपालिका स्वतंत्र होती है और न्याय की स्वाभाविकता को सुनिश्चित करने का प्रयास करती है।
6. **नागरिक स्वतंत्रताओं की व्यवस्था** : अधिनायकवादी शासन में सत्तारूढ़ व्यक्ति या दल को चुनौती देने का अधिकार किसी को नहीं होता है, जबकि सत्तावादी शासन में प्रचलित मान्यताओं और उनसे जुड़ी सत्ता को चुनौती देने का अधिकार किसी को नहीं होता है।

मूल्यांकन

अधिनायकवादी और सत्तावादी शासन के बीच कई महत्वपूर्ण अंतर होते हैं। अधिनायकवादी शासन में सत्ता एक ही दल या व्यक्ति के हाथों में संप्रभुता रखती है, जबकि सत्तावादी शासन में सत्ता की संप्रभुता विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच संघर्षमय होती है। अधिनायकवादी शासन में, सरकार विचारधारा की एकमतता को प्रोत्साहित करती है, जबकि सत्तावादी शासन में, विचारधारा की स्वतंत्रता अधिक होती है। न्यायपालिका की स्थिति भी अधिनायकवादी और सत्तावादी शासन में भिन्न होती है, जहाँ अधिनायकवादी शासन में न्यायपालिका सरकार के पक्ष में होती है, वहीं सत्तावादी शासन में न्यायपालिका स्वतंत्र होती है।

निष्कर्ष

अधिनायकवादी शासन जीवन के सर्वजनिक और निजी दोनों पहलुओं को नियंत्रित करने का प्रयास करता है, जबकि सत्तावादी शासन जीवन के हर पहलू को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं कर पाता है।





प्रश्न 10 – निर्वाचन प्रणाली से आप क्या समझते हैं? फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम के गुण और दोषों की चर्चा कीजिए।

उत्तर – परिचय

चुनाव प्रणाली एक प्रक्रिया है जिसमें लोग नियमित रूप से मतदान करके अपने नेताओं का चयन करते हैं। इस प्रणाली के माध्यम से सरकारी पदों के लिए प्रतिनिधियों को चुना जाता है, जिससे लोगों का सरकार में प्रतिनिधित्व होता है। चुनाव प्रणाली लोकतंत्र का मूल तत्व है जो लोगों को सरकार का चयन करने का अधिकार देता है। चुनाव प्रक्रिया उम्मीदवारों के प्रति जनमत को प्रकट करने और समाज की आवाज को सरकारी निर्णय में शामिल करने का माध्यम होती है।



निर्वाचन प्रणाली : निर्वाचन प्रणाली एक व्यवस्था है जिसमें जनता को नियमित अंतराल पर मतदान करने का अधिकार दिया जाता है, ताकि वे अपने प्रतिनिधियों या सरकारी अधिकारियों का चयन कर सकें। यह एक महत्वपूर्ण लोकतंत्रिक प्रक्रिया है जो लोकतंत्र की मौलिक धारा के रूप में मानी जाती है।

डूवर्जलो के अनुसार, "FIRST PAST THE POST प्रणाली" दो प्रमुख दलों के मध्य से अपेक्षाकृत स्थिर राजनीतिक प्रणालियों के विकास को प्रोत्साहित करती है।

फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम : "फर्स्ट पास्ट द पोस्ट" (FPTP) सिस्टम का मतलब है कि चुनाव क्षेत्र में सबसे पहले मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को ही चुनाव जीतने के लिए निर्वाचित किया जाता है। इस प्रणाली में, जो उम्मीदवार सबसे अधिक मत प्राप्त करता है, वह उम्मीदवार चुना जाता है, भले ही उसे अधिकाधिक मतों का बहुमत न मिले।

- इस प्रणाली में उम्मीदवार को कुल वोटों में से कम-से कम 50% + 1 वोटों की जरूरत होती है।
- इस प्रणाली का उपयोग यू. एस. ए., कनाडा और भारत में उपयोग किया जाता है।





फर्स्ट पास्ट द पोस्ट (FPTP) सिस्टम के कुछ महत्वपूर्ण गुण

1. **सरलता** : FPTP प्रणाली एक सरल और स्पष्ट प्रणाली है जिसमें वोटर्स को अपने पसंदीदा उम्मीदवार को वोट देने का सीधा विकल्प होता है।
2. **स्थिरता** : यह प्रणाली चुनावों की स्थिरता को बढ़ाती है क्योंकि विजयी उम्मीदवार को सबसे अधिक मत प्राप्त करने की जरूरत होती है, न कि बहुमत।
3. **अक्षमता की कमी** : FPTP प्रणाली में जीतने के लिए सीटें कम-से-कम 50%+1 मतों की आवश्यकता होती है, जिससे सामान्य बहुमत की अपेक्षा नहीं की जाती है।
4. **जनता का अधिकार** : यह प्रणाली जनता को सरकार चुनने में सीधा और अधिकारिक बनाती है, क्योंकि विजयी उम्मीदवार का चयन मतों की सबसे अधिकतम संख्या के आधार पर होता है।
5. **स्पष्टता** : इस प्रणाली में मतदान करने वालों को उम्मीदवारों की पसंद को स्पष्टता से व्यक्त करने की सुविधा होती है।

फर्स्ट पास्ट द पोस्ट (FPTP) सिस्टम के कुछ दोष

1. **बहुसंख्यकों की अनुचित प्रतिनिधित्व** : FPTP प्रणाली अक्सर एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों का उपयोग करती है, जो किसी भी खास क्षेत्र में बहुसंख्यक समर्थन को अधिकता देता है। इसके परिणामस्वरूप, छोटे दलों और अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व कम होता है और बड़े दलों का प्रतिनिधित्व बढ़ता है।
2. **बहुमत की कमी** : FPTP प्रणाली में, जीतने वाले उम्मीदवार को अकेले बहुमत की आवश्यकता होती है, जिससे कई बार उम्मीदवार जो सबसे अधिक मत प्राप्त करता है, वह भी सीट हासिल नहीं कर पाता है।
3. **बाध्यताएं और उपेक्षा** : FPTP प्रणाली में, कुछ क्षेत्रों में एक ही पार्टी या उम्मीदवार को स्थानांतरित करने की बाध्यता होती है, जिससे विचारों की विविधता को कम किया जाता है।
4. **मतदान के प्रकार का प्रभाव** : FPTP प्रणाली में, कई बार मतदाताओं को दूसरे प्रश्नों के प्रति अनुचित रूप से विकल्प नहीं मिलते हैं, क्योंकि वे सीधे उम्मीदवार के लिए मतदान करने पर प्रेरित होते हैं।

5. समाजिक असमानता : FPTP प्रणाली में, अक्सर ऐसा होता है कि छोटे पार्टियों या कम जनसंख्या वाले समुदायों का प्रतिनिधित्व कम होता है, जबकि बड़े पार्टियों या अधिकांश जनसंख्या वाले समुदायों का प्रतिनिधित्व अधिक होता है।

निष्कर्ष : FPTP प्रणाली के दोषों का समाधान करने के लिए विभिन्न निर्वाचन प्रणालियों का अध्ययन किया जा सकता है। प्रत्येक प्रणाली के अपने फायदे और दोष होते हैं, लेकिन कुछ प्रणालियाँ न्यायसंगती, प्रतिनिधित्व, और समाजिक समायोजन के मामले में बेहतर परिणाम देने की संभावना बढ़ाती हैं।



प्रश्न 11 – एक दलीय, द्वी दलीय तथा बहुदलीय व्यवस्थाओं में विभेद को समझाएं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए इनमें कौन-सी व्यवस्था बेहतरीन है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिये।

उत्तर – परिचय

दलीय व्यवस्था शासन को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह विभिन्न राजनीतिक दलों के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों और विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करती है, जिससे लोकतंत्र में बहुलवाद और विविधता बनी रहती है। चुनावों के माध्यम से जनता अपनी इच्छाओं और विचारों के अनुसार प्रतिनिधि चुन सकती है, दलीय व्यवस्था सत्ता का विकेंद्रीकरण करती है, राजनीतिक सहभागिता बढ़ाती है, और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाती है।



दलीय व्यवस्था

दलीय व्यवस्था : इससे तात्पर्य राजनीतिक दलों के संगठन और उनकी गतिविधियों से है जो किसी देश की राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। दलीय व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य है कि विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समूहों की आवाज़ को सुना जाए और उनके हितों को राजनीतिक निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में शामिल किया जाए।

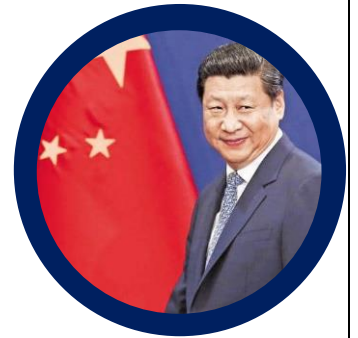
दलीय व्यवस्था के प्रकार

एक दलीय व्यवस्था	द्वि-दलीय व्यवस्था	बहु-दलीय व्यवस्था
वह दलीय व्यवस्था जिसमें केवल एक दल ही प्रधान होता है, एक-दलीय व्यवस्था कहलाती है।	वह दलीय व्यवस्था जिसमें प्रमुख दो दलों के बीच प्रतिस्पर्धा होते रहती है, द्वि-दलीय व्यवस्था कहलाती है।	वह दलीय व्यवस्था जिसमें दो से अधिक दल चुनावी क्षेत्र में अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं, बहु-दलीय व्यवस्था कहलाती है।
उदाहरण : चीन, उत्तरी कोरिया	उदाहरण : अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम	उदाहरण : भारत, इटली जर्मनी।



एकदलीय, द्विदलीय और बहुदलीय व्यवस्थाओं में विभेद

1. एकदलीय व्यवस्था : इस व्यवस्था में केवल एक राजनीतिक दल को मान्यता प्राप्त होती है और वही सत्ता में रहता है। अन्य दलों को चुनाव लड़ने या राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती।



विशेषताएँ -

- **राजनीतिक नियंत्रण :** एकदलीय व्यवस्था में सत्ता पर कड़ा नियंत्रण होता है। एक ही पार्टी सत्ता में होती है और सभी सरकारी नीतियों और निर्णयों पर उसका एकाधिकार होता है। इस व्यवस्था में निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया तेजी से होती है क्योंकि केवल एक पार्टी के भीतर ही सहमति बनानी होती है।
- **विपक्ष की अनुपस्थिति :** एकदलीय व्यवस्था में विपक्ष की कोई भूमिका नहीं होती। किसी भी प्रकार की विपक्षी आवाज़ को दबा दिया जाता है। इससे सत्ता में स्थिरता बनी रहती है और शासन में निरंतरता होती है, लेकिन यह लोकतांत्रिक मूल्यों के विपरीत है।
- **स्वतंत्रता की कमी :** एकदलीय व्यवस्था में अभिव्यक्ति और राजनीतिक स्वतंत्रता की भारी कमी होती है। सरकार की नीतियों की आलोचना करने या विरोध करने की स्वतंत्रता नहीं होती। मीडिया पर सख्त नियंत्रण रहता है और स्वतंत्र प्रेस का अभाव होता है।
- **उदाहरण :** चीन की कम्युनिस्ट पार्टी, उत्तर कोरिया की वर्कर्स पार्टी।

2. द्विदलीय व्यवस्था : इस व्यवस्था में दो प्रमुख राजनीतिक दल होते हैं जो सत्ता में आने के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। अन्य दल भी हो सकते हैं, लेकिन वे आमतौर पर सत्ता में आने में सफल नहीं होते।

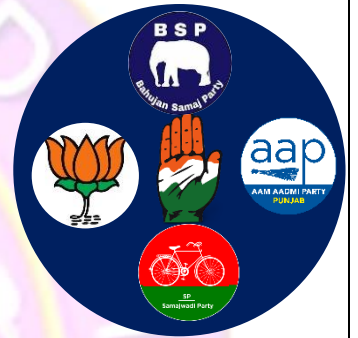


विशेषताएँ -

- **स्पष्ट विकल्प :** द्विदलीय व्यवस्था में चुनावों में जनता को स्पष्ट विकल्प होते हैं, जिससे वे अपनी पसंद के अनुसार वोट दे सकते हैं। यह राजनीतिक प्रक्रिया को खुली और पारदर्शी बनाता है।
- **सत्ता का परिवर्तन :** इस प्रकार की व्यवस्था में सत्ता का परिवर्तन सुगमता से होता है। चुनावी प्रक्रिया के माध्यम से जनता सरकार को बदलने का विकल्प रखती है।

- **स्थिरता** : द्वि-दलीय व्यवस्था में स्थिरता का मुख्य कारण दो विभिन्न दलों के मिलीभगत के माध्यम से होता है। जब दोनों दल सरकार बनाने के लिए साथ मिलते हैं, तो सरकार को स्थापित करने और काम करने में अधिक स्थिरता मिलती है।
- **सीमित अवसर** : इस प्रकार की व्यवस्था में छोटी या नई पार्टियों के लिए सीमित स्थान होता है। यह दोनों प्रमुख दलों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है, जिससे वे अपने विचारों को लोगों के सामने रख सकते हैं।
- **उदाहरण** : संयुक्त राज्य अमेरिका की डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियाँ, यूनाइटेड किंगडम की कंजरवेटिव और लेबर पार्टियाँ।

3. बहुदलीय व्यवस्था : इस व्यवस्था में कई राजनीतिक दल होते हैं जो सत्ता में आने के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसमें अक्सर गठबंधन सरकारें बनती हैं क्योंकि कोई भी दल अकेले पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता।



विशेषताएँ –

- **विविध प्रतिनिधित्व** : यह व्यवस्था उन्हें शासन में शामिल करती है जिन्होंने अपने समूहों के विभिन्न हितों को बयान किया है, जैसे किसान, व्यापारी, और श्रमिक संघ।
- **गठबंधन सरकारें** : इस व्यवस्था में आमतौर पर सरकारें गठित होती हैं, जहां कई दलों का साथ होता है, जिनके बीच समझौता होता है।
- **विचारधाराओं की विविधता** : व्यापक विचारधाराओं और समूहों को प्रतिनिधित्व मिलता है।
- **अस्थिरता की संभावना** : इसमें विचारधाराओं और विचारकों की विविधता होती है, जो विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर विचार करते हैं।
- **उदाहरण**: भारत, इटली, जर्मनी।



लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए बेहतरीन व्यवस्था

लोकतांत्रिक दृष्टिकोण से **बहुदलीय व्यवस्था** को बेहतरीन माना जा सकता है क्योंकि यह विभिन्न विचारधाराओं और सामाजिक समूहों को प्रतिनिधित्व प्रदान करती है। इससे शासन में अधिक सहभागिता और समावेशिता सुनिश्चित होती है।

- **प्रतिनिधित्व की विविधता** : बहुदलीय प्रणाली विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समूहों को प्रतिनिधित्व का अवसर देती है।
- **समावेशिता** : यह प्रणाली अधिक समावेशी होती है, जिससे सभी वर्गों और समुदायों की आवाज़ शासन में सुनी जाती है।
- **विचारधाराओं की प्रतिस्पर्धा** : विभिन्न विचारधाराओं के बीच स्वस्थ प्रतिस्पर्धा होती है, जिससे बेहतर नीतियाँ और निर्णय निकलते हैं।
- **लोकतांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप** : यह व्यवस्था लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता और न्याय को बढ़ावा देती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार, बहुदलीय व्यवस्था लोकतांत्रिक शासन के लिए अधिक उपयुक्त मानी जा सकती है, बशर्ते कि इसके लिए मजबूत संस्थागत ढांचे और राजनीतिक संस्कृति की आवश्यकता होती है।



प्रश्न 12 – क्या आपके विचार में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अन्य चुनाव प्रणालियों से श्रेष्ठतम है? कारण सहित उत्तर दीजिए।

अथवा

“आनुपातिक प्रतिनिधित्व की चुनावी व्यवस्था विविधता वाले देशों के लिए अधिक उपयुक्त है।” टिप्पणी करें।

उत्तर – परिचय

आनुपातिक प्रतिनिधित्व एक चुनावी व्यवस्था है, जिसमें राजनीतिक दलों को संसद में उनकी **प्राप्त वोटों के अनुपात में सीटें** मिलती हैं। इस प्रणाली को विविधता वाले देशों के लिए अधिक सही माना जाता है क्योंकि यह विभिन्न **सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक** समूहों की आवाज़ को प्रतिनिधित्व प्रदान करती है।



आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली **फर्स्ट पास्ट द पोस्ट प्रणाली** का एक विकल्प है जिसमें किसी राजनीतिक दल को विधायिका में प्रतिशत के आधार पर वोट को शामिल किया जाता है, यह प्रणाली **सूची आनुपातिक प्रतिनिधित्व** और **एकल हस्तांतरणीय वोट** पर जोर देती है।



प्रतिनिधित्व की इस प्रणाली का प्रतिपादन सबसे पहले 18वीं सदी के एक अंग्रेज विचारक **थॉमस हेयर** द्वारा अपनी पुस्तक **“प्रतिनिधि का चुनाव (Election of Representatives)”** में किया गया था, जिनके नाम पर इस प्रणाली को **हेयर प्रणाली** भी कहा जाता है।



हमारे विचार अनुसार - आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली श्रेष्ठ है या नहीं, यह विभिन्न देशों की स्थिति पर निर्भर करता है, इस प्रणाली के **गुण** और **दोष** किसी देश के लिए इसे उचित और अनुचित बनाते हैं -

प्रमुख गुणों की व्याख्या के आधार पर इसे अपनाए जाने के कारण



आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को **डेनमार्क, बेल्जियम, ग्रीस, हंगरी, इटली** आदि देशों द्वारा निम्नलिखित गुणों के कारण अपनाया गया-

1. सीट लाभ में संतुलन

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का एक प्रमुख गुण यह है कि यह बड़े दलों के लिए सीट लाभ (seat bonus) को कम कर देती है और छोटे दलों को भी समान रूप से अवसर प्रदान करती है।

2. अल्पसंख्यक दलों को प्रतिनिधित्व

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि विभिन्न विचारधाराओं और समूहों को संसद में प्रतिनिधित्व मिले, जिससे वे अपनी समस्याओं और मुद्दों को प्रमुखता से उठा सकें।

3. एकाधिकार को रोकना

इस प्रणाली में कोई भी दल संसद में पूर्ण नियंत्रण नहीं पा सकता, जिससे सत्ता का एकाधिकार नहीं होता और निर्णय प्रक्रिया में बहुलता का समावेश होता है।

4. समावेशी निर्णय प्रक्रिया

विभिन्न दलों और समूहों की भागीदारी सुनिश्चित करने से, यह प्रणाली विभिन्न विचारधाराओं का समायोजन करती है, जिससे निर्णय अधिक समावेशी और व्यापक दृष्टिकोण के साथ लिए जाते हैं।

5. स्थिरता और निरंतरता

इस प्रणाली में गठबंधन सरकारें अधिक स्थिर होती हैं क्योंकि वे विभिन्न दलों और समूहों की सहमति पर आधारित होती हैं, एवं विभिन्न दलों के शामिल होने से नीतियों में निरंतरता बनी रहती है और उन्हें लागू करने में अधिक सहयोग मिलता है।

“आनुपातिक प्रतिनिधित्व की चुनावी व्यवस्था विविधता वाले देशों के लिए उपयुक्त है।” कथन की पुष्टि :

उपरोक्त गुणों को ध्यान में रखते हुए, यह कहा जा सकता है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व की चुनावी व्यवस्था *विविधता वाले देशों (जैसे भारत) के लिए उपयुक्त है*, क्योंकि यह सभी वर्गों और समुदायों को राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मिलित करती है और *लोकतंत्र को अधिक व्यापक और समावेशी बनाती है*।



**प्रमुख दोषों की व्याख्या के आधार पर इसे ठुकराए जाने के कारण**

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को **अमेरिका, भारत, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया** आदि देशों द्वारा निम्नलिखित दोषों के कारण ठुकराया गया-

1. वास्तविक प्रतिनिधित्व का अभाव :

इस प्रणाली से चुने गए प्रतिनिधि वास्तव में जनता के प्रतिनिधि नहीं होते, बल्कि वे उस दल या वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य अपने निजी स्वार्थों को साधना होता है।

2. अस्थायी सरकारें :

जब राजनीतिक दलों की संख्या ज्यादा हो जाती है तो कोई भी दल अकेले सरकार नहीं बना पाता। ऐसे में मिलीजुली सरकारें बनती हैं जो अक्सर अस्थायी होती हैं और प्रशासन की एकता एवं उत्तरदायित्व को खत्म कर देती हैं।

3. श्रेष्ठ विधियों का निर्माण असंभव :

आनुपातिक प्रतिनिधित्व को अपनाने के प्राणीनामस्वरूप व्यवस्थापिका विभिन्न प्रकार के विरोधी विचारों का अखाड़ा बन जाती है। इसका प्रभाव विधि-निर्माण पर भी पड़ता है और विधि निर्माण कार्य सही रूप से सम्पन्न नहीं हो पता है।

4. वर्गीय हितों को प्रोत्साहन :

इस प्रणाली से चुनी गई विधान सभा राष्ट्रीय एकता की जगह विभिन्न क्षेत्रीय और वर्गीय हितों का संघर्ष-स्थल बन जाती है। सभी समस्याओं पर राष्ट्रीय हित के बजाय वर्गीय हितों के नजरिये से विचार होता है।

5. राष्ट्रीय एकता के लिए घातक :

आनुपातिक प्रतिनिधित्व में समाज छोटे-छोटे स्वार्थमूलक गुटों और विभागों में बंट जाता है। इन गुटों के पास राष्ट्रीय स्तर का कोई कार्यक्रम नहीं होता और ये समाज में गुटबंदी और संकीर्णता फैलाते हैं, जिससे राष्ट्रीय एकता को नुकसान होता है।

निष्कर्ष

आनुपातिक प्रतिनिधित्व की उक्त विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि यह प्रणाली केवल ऐसे देश में ही लागू हो सकती है जहां के लोग शिक्षित हो। इसलिए इस प्रणाली को ज्यादा लोकप्रियता नहीं मिली। कई विकसित देशों में भी इसे सीमित सफलता प्राप्त हुई है, इस प्रणाली को अपनाना देश की राजनीतिक स्थिति, जनता की राजनीतिक चेतना और शिक्षा पर निर्भर है।



प्रश्न 13 – लोकतंत्रीकरण से आप क्या समझते हैं? उत्तर-औपनिवेशिक देशों में लोकतांत्रिक परिवर्तन की समस्याओं और संभावनाओं का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर – परिचय

20वीं सदी के मध्य में दुनिया भर में लोकतंत्रों के तेजी से विकास के परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय राजनीति में लोकतंत्र आपत्ति से आदर्श बन गया। लोकतंत्र को एक ऐसे शासन के रूप में दर्शाया गया है जिसमें जनता अपने प्रतिनिधि का चयन करती है, और सर्वोच्च शक्ति लोगों के पास होती है। उत्तर-औपनिवेशिक देशों में लोकतांत्रिक परिवर्तन कई प्रकार की चुनौतियों और संभावनाओं से घिरा हुआ है। जिसके अंतर्गत लोकतंत्रीकरण महत्वपूर्ण है क्योंकि यह लोकतांत्रिक शासन को बढ़ावा देता है।



लोकतंत्रीकरण से तात्पर्य :

लोकतंत्रीकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से किसी देश या समाज में लोकतांत्रिक संस्थाओं, मूल्यों और प्रक्रियाओं को स्थापित और मजबूत किया जाता है। यह प्रक्रिया जटिल और निरंतर होती है, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं का समावेश होता है।

लोकतंत्रीकरण का उद्देश्य एक अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और न्यायसंगत समाज का निर्माण करना है, जहां हर व्यक्ति की आवाज़ सुनी जाती है और सभी के अधिकार सुरक्षित होते हैं।

उत्तर-औपनिवेशिक देशों में लोकतांत्रिक परिवर्तन की समस्याएँ और संभावनाएँ :

समस्याएँ -

- राजनीतिक अस्थिरता :** औपनिवेशिक शासन से मुक्त होने के बाद, कई देशों में सत्ता संघर्ष और राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हुआ। विभिन्न गुटों और नेताओं के बीच सत्ता संघर्ष ने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को कमजोर किया। उदाहरणस्वरूप, कई अफ्रीकी और एशियाई देशों में सैन्य तख्तापलट और तानाशाही की घटनाएँ आम हो गईं।
- सांस्कृतिक और सामाजिक विविधता :** उत्तर-औपनिवेशिक देशों में अक्सर विभिन्न जातीय, भाषाई और धार्मिक समूह होते हैं। इन समूहों के बीच में सामंजस्य स्थापित करना और एक सर्वसम्मत लोकतांत्रिक प्रणाली बनाना चुनौतीपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न भाषाओं और धर्मों के बीच संतुलन बनाना एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है।

3. **आर्थिक असमानता** : औपनिवेशिक काल के दौरान आर्थिक शोषण और संसाधनों की लूट के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी आर्थिक असमानता बनी रही। गरीबी और बेरोजगारी ने लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थिरता को खतरे में डाला है। उदाहरणस्वरूप, अफ्रीका के कई देशों में अभी भी गरीबी और विकासशीलता की समस्या बनी हुई है।
4. **शिक्षा और साक्षरता का अभाव** : जनता में पर्याप्त शिक्षा और साक्षरता का अभाव लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय और सूचित भागीदारी को बाधित करता है। शिक्षा की कमी से लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक नहीं हो पाते हैं।
5. **भ्रष्टाचार**: भ्रष्टाचार की व्यापकता ने लोकतांत्रिक संस्थाओं और प्रक्रिया की वैधता और विश्वसनीयता को प्रभावित किया है। सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार की जड़ें गहरी होने के कारण लोग लोकतांत्रिक प्रणाली से विश्वास खो बैठते हैं।

संभावनाएँ -

1. **शिक्षा और जागरूकता** : शिक्षा के प्रसार और राजनीतिक जागरूकता के माध्यम से जनता को लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित किया जाता है। शिक्षा के माध्यम से लोगों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाता है, जिससे वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अधिक सक्रिय होते हैं।
2. **संविधान और न्यायिक सुधार** : लोकतांत्रिक संविधान और न्यायिक ढांचे के निर्माण और उनके सुदृढीकरण से लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूती मिलती है। संविधान का सशक्त होना और उसका प्रभावी कार्यान्वयन लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करता है।
3. **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग** : अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और विकसित लोकतांत्रिक देशों से सहयोग और समर्थन प्राप्त करके लोकतांत्रिक सुधारों को लागू किया जा सकता है। यह सहयोग आर्थिक सहायता, तकनीकी ज्ञान और संसाधनों के रूप में होते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है, उत्तर-औपनिवेशिक देशों में लोकतांत्रिक परिवर्तन एक जटिल और चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया है, हालांकि, इन चुनौतियों के बावजूद, लोकतंत्र की स्थापना और सुदृढीकरण की संभावनाएँ भी प्रबल हैं। सही नेतृत्व, अंतरराष्ट्रीय समर्थन, नागरिक समाज की सक्रियता और तकनीकी प्रगति जैसे कारकों ने इन देशों में लोकतांत्रिक परिवर्तन को प्रोत्साहित किया है।



संक्षिप्त टिप्पणी

- i. लोकलुभावनवाद
- ii. मिश्रित चुनावी व्यवस्था
- iii. यूटोपियन और वैज्ञानिक समाजवाद में अंतर
- iv. महिलाओं की चुनाव में भागीदारी
- v. ब्रिटेन और अमेरिका में दलीय व्यवस्था
- vi. राष्ट्रवाद और चीनी क्रांति



**(i) लोकलुभावनवाद****परिचय**

लोकलुभावनवाद (Populism) एक राजनीतिक दृष्टिकोण है जो **"लोगों के हितों"** को **"अभिजात वर्ग"** के खिलाफ खड़ा करता है। यह सत्ता-विरोधी भावना से जुड़ा है और जटिल समस्याओं के सरल समाधान प्रस्तुत करता है। इसका उदय **वैश्वीकरण के दौरान गलत नीतियों के खिलाफ प्रतिक्रिया के रूप** में देखा गया, जिससे आर्थिक असमानता और सांस्कृतिक बदलाव बढ़े। यह विचारधारा वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों हो सकती है और विभिन्न देशों में विविध रूप ले सकती है।



लोकलुभावनवाद (Populism) एक राजनीतिक दृष्टिकोण या शासन प्रणाली है जिसमें नेता या आंदोलन जनता की वास्तविक इच्छाओं और आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं। लोकलुभावन नेता जनता के बड़े हिस्से को प्रभावित करने में सक्षम होते हैं

लोकलुभावनवाद के प्रमुख तत्व

राजनीतिक कुलीनों का अविश्वास

आर्थिक पृथक्करण

राष्ट्रीय संस्कृतियों और परंपराओं का विनाश

राजनीतिक दलों से नागरिकों का बंटवारा

लोकलुभावनवाद के प्रमुख दृष्टिकोण**लोकप्रिय संस्थागत दृष्टिकोण****लैक्लौअन दृष्टिकोण****राजनीतिक रणनीति दृष्टिकोण****लोककथाओं दृष्टिकोण**

यह दृष्टिकोण लोकलुभावनवाद को लोकतंत्र के भीतर लोगों को तैयार करने के लिए एक सकारात्मक शक्ति के रूप में देखता है।

यह दृष्टिकोण लोकलुभावनवाद को एक मुक्ति की शक्ति के रूप में मानता है जो समाज के वंचित वर्ग को शामिल करने के लिए परिवर्तन में प्रेरित कर सकता है।

यह दृष्टिकोण लोकलुभावनवाद को एक राजनीतिक रणनीति के रूप में बताता है जिसमें मजबूत करिश्माई नेताओं का उद्भव होता है और उनका जनता के साथ सीधा संबंध होता है।

यह दृष्टिकोण लोकलुभावनवाद को एक लोककथाओं के रूप में बताता है जिसका उपयोग दलों एवं नेताओं द्वारा जनता और मीडिया का ध्यान आकर्षित करने के लिए किया जाता है।



लोकलुभावनवाद की विशेषताएँ

1. **जनता का प्रतिनिधित्व** : लोकलुभावनवादी नेता आम जनता की इच्छाओं और आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करने का दावा करते हैं। वे लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को उजागर करके उनके समर्थन को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
2. **अभिजात वर्ग के खिलाफ संघर्ष** : लोकलुभावनवादी आंदोलनों और नेताओं की बुनियादी विशेषताओं में से एक यह है कि वे सत्ता पर कब्जा करने के लिए अभिजात वर्ग या सत्ताधारी प्रतिष्ठान के खिलाफ संघर्ष करते हैं। वे यह दावा करते हैं कि वे जनता की इच्छाओं का सही प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि अभिजात वर्ग या वर्तमान सत्ता व्यवस्था जनता की अनदेखी करती है।
3. **करिश्माई नेतृत्व** : लोकलुभावनवाद में नेता अक्सर करिश्माई व्यक्तित्व के होते हैं और उनका जनता के साथ सीधा संबंध होता है। वे जनता को प्रभावित करने और उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए सक्षम होते हैं।
4. **विभिन्न राजनीतिक संदर्भ** : लोकलुभावनवाद को विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में देखा जा सकता है। यह एक निश्चित आंदोलन या विश्वासों का समूह नहीं है, बल्कि यह विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग रूपों में प्रकट हो सकता है।

निष्कर्ष

लोकलुभावनवाद एक जटिल राजनीतिक दृष्टिकोण है जो जनता की इच्छाओं और आवश्यकताओं को प्रतिपादित करने का दावा करता है। यह विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों में अलग-अलग रूपों में प्रकट होता है। इसका प्रभाव लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और सामाजिक परिवर्तन पर पड़ता है, जो इसे एक महत्वपूर्ण राजनीतिक अवधारणा बनाता है।

(iii) मिश्रित चुनावी व्यवस्था

परिचय

मिश्रित चुनावी व्यवस्था एक ऐसा निर्वाचन प्रणाली है जो **आनुपातिकता और बहुसंख्यकवाद** को मिश्रित करती है। इस प्रणाली में, एकल सदस्य बहुलता प्रणाली और अतिरिक्त सदस्य प्रणाली का उपयोग किया जाता है। इस प्रणाली का उदाहरण कुछ देशों में मिलता है जैसे कि **जर्मनी, इटली, न्यूजीलैंड, और यूके** (स्कॉटिश संसद और वेल्श विधानसभा)।



मिश्रित चुनावी व्यवस्था : मिश्रित चुनावी व्यवस्था एक प्रणाली है जिसमें एकल सदस्य बहुलता प्रणाली और अतिरिक्त सदस्य प्रणाली का संयोजन होता है।

इस प्रणाली का उद्देश्य **आनुपातिकता और बहुसंख्यक विचारों का समावेश करना** है, जिससे राजनीतिक संरक्षण और सामाजिक समावेश को मिले। इस प्रणाली का उपयोग कई देशों में किया जाता है, जैसे कि **जर्मनी, न्यूजीलैंड, और इटली**।

मिश्रित चुनावी प्रणाली की विशेषताएँ

1. **आनुपातिकता का संरक्षण** : एकल सदस्य बहुलता प्रणाली द्वारा सीटों का अनुपातिक वितरण किया जाता है, जो आनुपातिकता को संरक्षित रखता है। इसके साथ ही, अतिरिक्त सदस्य प्रणाली (एएमएस) के माध्यम से बहुसंख्यक समुदायों को भी प्रतिनिधित्व मिलता है।
2. **पार्टी सूची प्रणाली** : एएमएस द्वारा पार्टी सूची प्रणाली का उपयोग किया जाता है, जिसमें उम्मीदवारों की सूची होती है। मतदाताओं को दो वोट डालने की सुविधा होती है - एक उम्मीदवार के लिए और एक पार्टी के लिए।
3. **प्रतिनिधित्व की अधिकता** : मिश्रित चुनावी प्रणाली के उपयोग से प्रतिनिधित्व की अधिकता मिलती है। यह विभिन्न समुदायों को समाहित करता है और उनके प्रतिनिधित्व में वृद्धि करता है।

4. **राजनीतिक समर्थन का विस्तार** : इस प्रणाली के उपयोग से राजनीतिक समर्थन का विस्तार होता है, क्योंकि यह बहुसंख्यक समुदायों को सम्मिलित करता है और उनकी आवाज को सुनता है।
5. **न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व** : इस प्रणाली का उपयोग करके न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जा सकता है, जिससे समाज के सभी वर्गों की आवाज को सुना जा सके।

निष्कर्ष : मिश्रित चुनावी व्यवस्था एक प्रभावी चुनाव प्रणाली है जो प्रतिनिधित्व और निष्पक्षता को संतुलित रखती है और विभिन्न प्रकार के सीटों के लिए वोटिंग को संगठित करती है।





(iii) यूटोपियन और वैज्ञानिक समाजवाद में अंतर

परिचय

समाजवाद एक ऐसी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें उत्पादन के साधनों (जैसे कारखाने, ज़मीन, और संसाधन) का **स्वामित्व और नियंत्रण लोगों के पास** होता है। इसका मतलब है कि समाज के सभी लोग मिलकर उत्पादन के साधनों का उपयोग करते हैं और उनके द्वारा उत्पन्न लाभ को समान रूप से बाँटा जाता है। समाजवाद को दो अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित किया गया है, **यूटोपियन और वैज्ञानिक समाजवाद**।



यूटोपियन समाजवाद

यूटोपियन समाजवाद (Utopian Socialism) समाजवाद का वह रूप है जिसमें एक आदर्श समाज की कल्पना की जाती है जहाँ सभी लोग समान और सुखी होते हैं। यह समाजवाद के शुरुआती रूपों में से एक है और इसे समाज के विचारशील सुधारकों द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इसमें सभी लोग समान रूप से संसाधनों का उपयोग करते हैं।

- **कार्ल मार्क्स** द्वारा समाजवादियों के लिए "यूटोपियन" शब्द का प्रयोग किया गया।
- यह समकालीन वास्तविकता की आलोचना द्वारा शोषणमुक्त समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने से संबंधित है।

वैज्ञानिक समाजवाद

वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) समाजवाद का एक अधिक यथार्थवादी (वास्तविकता से जुड़ा हुआ) और व्यवहारिक रूप है, जिसमें समाज के विकास को ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत पर आधारित किया गया है। इसका **मुख्य उद्देश्य** पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके एक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना है जहाँ श्रमिक वर्ग का नियंत्रण हो, जिसे **कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स** द्वारा विकसित किया गया था।

- कार्ल मार्क्स व एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित समाजवादी विचारधारा से ही वैज्ञानिक समाजवाद की उत्पत्ति होती है, इनके "**साम्यवादी घोषणा-पत्र**" में सामाजिक वर्ग संघर्ष को दर्शाया गया है।



यूटोपियन समाजवाद और वैज्ञानिक समाजवाद में प्रमुख अंतर

यूटोपियन समाजवाद	वैज्ञानिक समाजवाद
यूटोपियन समाजवाद कल्पनात्मक तथा समाजिक आदर्शों और विचारों पर आधारित होता है।	वैज्ञानिक समाजवाद वास्तविकता और व्यावहारिक रूप एवं भौतिकवाद के सिद्धांत पर आधारित होता है।
जिसका मुख्य उद्देश्य समाजिक और आर्थिक न्याय को प्राथमिकता देना होता है , जिससे समाज में सामंजस्य और समृद्धि का स्थापना हो सके।	इसका मुख्य उद्देश्य पूँजीवाद व्यवस्था को समाप्त करके श्रमिक वर्ग के नियंत्रण वाली समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना है ।
कार्ल मार्क्स के साथी एंगेल्स ने अपने पूर्व प्रचलित समाजवादी विचारों को कल्पना से जुड़े समाजवाद (Utopian socialism) का नाम दिया।	फ्रेडरिक एंगेल्स ने कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक सिद्धांत को वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) का नाम दिया।
यह समाज में सुधार को प्रोत्साहित करने के लिए उत्तम आदर्शों का प्रयोग करता है, जिसमें सामाजिक निर्माण का एक निश्चित आदर्श चित्रण किया जाता है।	वैज्ञानिक समाजवाद समाज की प्रगति को तकनीकी और आधुनिक प्रगति के माध्यम से देखता है और समाजिक परिवर्तन को वैज्ञानिक तथ्यों और छानबीन के आधार पर करता है।
यह समाज में शामिल समस्याओं के समाधान पर जोर देता है और एक आदर्श समाज की प्रतिष्ठा के लिए उच्च स्तर पर स्वप्न देखता है।	वैज्ञानिक समाजवाद बड़े स्तर पर तकनीकी और आधुनिक प्रगति के माध्यम से समाज को सुधारने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन और नवाचार की अवधारणा से जुड़ा हुआ है।
उदाहरण: रॉबर्ट ओवेन की नई लैनार्क परियोजना।	उदाहरण: सोवियत संघ में बोल्शेविक क्रांति।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यूटोपियन समाजवाद आदर्शवादी दृष्टिकोण पर आधारित है और नैतिकता एवं आदर्शों के माध्यम से एक आदर्श समाज की कल्पना करता है। इसके विपरीत, वैज्ञानिक समाजवाद ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है, और वर्ग संघर्ष तथा आर्थिक बदलावों के माध्यम से समाज में सुधार लाने की प्रक्रिया को समझता है। दोनों ही समाजवाद के रूप समाज को बदलने की दिशा में योगदान करते हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और पद्धतियों में बुनियादी भिन्नताएं हैं।

(iv) महिलाओं की चुनाव में भागीदारी

परिचय

महिलाओं की चुनाव में भागीदारी एक महत्व और आवश्यक अंग है जो राजनीतिक प्रक्रिया को समृद्ध करता है। महिलाएं समाज में विभिन्न भूमिकाओं को निभाती हैं, जैसे कि **मतदानकर्ता, उम्मीदवार, और नेता**। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी का महत्व न केवल लैंगिक समानता की स्थिति को प्रोत्साहित करने में होता है, बल्कि इससे समाज की सार्वभौमिक उन्नति और विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।



- 1894 में न्यूजीलैंड ने महिलाओं को पहली बार मताधिकार दिया। इसके बाद, ऑस्ट्रेलिया ने इसे अपनाया, जिसे बारीकी से पीछा।
- फिर, 1914 में नॉर्वे और फिनलैंड में महिलाओं को वोटिंग का अधिकार प्रदान किया गया, जबकि यूएसए और यूनाइटेड किंगडम ने 1920 और 1928 में क्रमशः महिलाओं को मताधिकार दिया।

महिलाओं की चुनाव में भागीदारी

1. **मतदानकर्ता के रूप में**: महिलाएं मतदानकर्ता के रूप में अपने अधिकार का प्रयोग करती हैं। वे मतदान केंद्रों पर जाकर मतदान करती हैं और अपने विचार का प्रतिनिधित्व करती हैं। मतदानकर्ता के रूप में महिलाओं की भागीदारी राजनीतिक प्रक्रिया में न्यायपूर्णता और प्रभाव को बढ़ाती है।
2. **उम्मीदवार के रूप में**: महिलाएं उम्मीदवार के रूप में भी उतरती हैं, जो राजनीतिक दलों से जुड़कर अपने प्रतिनिधित्व को बढ़ाने का प्रयास करती हैं। उनकी उम्मीदवारी महिलाओं के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती है और उनकी आवाज को सुनाती है।
3. **नेता के रूप में**: कुछ महिलाएं राजनीतिक प्रक्रिया में अपने नेतृत्व के माध्यम से भाग लेती हैं, जो उन्हें समाज में प्रेरणा स्रोत और रोल मॉडल बनाता है। वे अपने नेतृत्व के जरिए महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

4. **प्रचार और प्रचारणा** : सोशल मीडिया और समाचार मीडिया के माध्यम से, महिलाएं चुनावी संदेश प्रसारित करके अपनी भागीदारी दिखाती हैं। वे अपने उद्देश्यों और मुद्दों को सार्वजनिक मंच पर प्रस्तुत करती हैं।
5. **सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में शामिल होकर** : कुछ महिलाएं अपनी सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में शामिल होकर भाग लेती हैं। ये संगठन अपने मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करके लोगों को जागरूकता बढ़ाने में महिलाएं अपनी भूमिका निभाती हैं।

निष्कर्ष : महिलाएं चुनाव में मतदानकर्ता, उम्मीदवार, नेता, प्रचारक और सामाजिक संगठनों में भाग लेती हैं। वे समाज में प्रेरणा स्रोत बनती हैं और महिला मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जिससे चुनावी प्रक्रिया में उनकी भागीदारी महत्वपूर्ण योगदान देती है।



(v) ब्रिटेन और अमेरिका में दलीय व्यवस्था

परिचय

दलीय व्यवस्था एक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था है जिसमें राष्ट्र के नागरिक विभिन्न दलों में विभाजित होते हैं, जो अपनी विशेष धार्मिक, सामाजिक, या आर्थिक मान्यताओं और उद्देश्यों के आधार पर काम करते हैं। यह व्यवस्था लोकतंत्रिक राष्ट्रों में प्रचलित है, यह किसी भी देश के शासन तंत्र को चलाने के लिए अत्यंत आवश्यक है, ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसी महाशक्तियों में दलीय व्यवस्था का महत्व विकास के मुद्दों से गहराई से जुड़ा हुआ है।



ब्रिटेन में दलीय व्यवस्था

ब्रिटेन में लोकतंत्र के साथ राजनीतिक दलों का विकास हुआ। प्रारंभ से दो दल रहे, जिनका विकास विभिन्न कारणों से हुआ। जैसे- जनसंख्या का समान होना, 19वीं शताब्दी के बाद वर्ग समाज का संतुलन, राष्ट्रीय एकता, परंपरागत तत्व, और राजनीतिक दलों की विशेषता।

- **अनुदार दल (Conservative Party):** टोरी दल का परिवर्तित रूप, जो पहले केवल पूँजीपति वर्ग को समर्थन देता था, परंतु 1867 के बाद आम लोगों को भी इसमें शामिल किया गया। इस दल में स्थानीय संस्थाओं का एक राष्ट्रीय संगठन है जिसे राष्ट्रीय यूनियन कहा जाता है, और इसकी दूसरी संस्था संसदीय दल की शाखा है। नेता का चयन इन संस्थाओं द्वारा होता है।
- **मजदूर दल (The Labour Party):** 1899-1900 में स्थापित, यह दल मजदूर संघ सदस्यों के समर्थन के साथ ही शिक्षक, व्यापारी, असैनिक कर्मचारी, पत्रकार, और किसानों के समर्थन पर भी निर्भर है। यह दल संघीय आधार पर संगठित है और समाजवाद को प्रमुख मानता है।

ब्रिटेन की दलीय व्यवस्था की विशेषता

1. द्वि-दलीय प्रणाली - ब्रिटेन में राजनीतिक दलों का प्रमुखतम विशेषता है कि वह दो विभिन्न दलों में विभाजित होते हैं। पहले ये दल केवेलियर और राउण्ड हेड्स थे, परंतु अब अनुदार दल और मजदूर दल प्रमुख दो दल हैं।

2. केन्द्रीयकरण - ब्रिटेन में राजनीतिक दलों का एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि उनका संगठन केंद्रीय होता है। इसका मुख्य कारण है जनसंख्या की समानता और देश के छोटे आकार की।

3. अधिक सदस्यता - ब्रिटेन में राजनीतिक दलों के सदस्यों की संख्या अधिक होती है। यहाँ दलों की शाखाएँ देशभर में फैली होती हैं और उनके बहुत सारे औपचारिक सदस्य होते हैं।

4. अनुशासन - ब्रिटेन में राजनीतिक दल बहुत अनुशासित होते हैं। यहाँ दल एक व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं और अनुशासन का पालन करते हैं।

5. नेता का महत्व - ब्रिटिश राजनीतिक दलों में नेता का महत्व बहुत उच्च होता है। नेता दल का केंद्र बनता है और आम चुनावों में प्रधानमंत्री के रूप में उन्हें चुना जाता है।

अमेरिका में दलीय व्यवस्था

अमेरिका में द्वि-दलीय प्रणाली है, जिसमें **रिपब्लिकन पार्टी** और **डेमोक्रेटिक पार्टी** दो प्रमुख राजनीतिक दल हैं। इन दोनों दलों की उत्पत्ति का ऐतिहासिक कारण अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी भागों में आर्थिक और सामाजिक विभाजन था।

- दक्षिणी राज्यों में बागान अर्थव्यवस्था पर आधारित था जबकि उत्तरी राज्यों में औद्योगिकीकरण का प्रभाव था। संघ के स्तर पर, उत्तर के लोग अपने औद्योगिक क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के लिए प्राथमिकता देते थे, जबकि दक्षिणी राज्यों में बागान कार्यों की सुरक्षा के लिए दास प्रथा का समर्थन किया गया।
- इस विभाजन ने '**डेमोक्रेटिक पार्टी**' की उत्पत्ति को उत्तरी राज्यों में और '**रिपब्लिकन पार्टी**' की उत्पत्ति को दक्षिणी राज्यों में होने दिया।
- अमेरिका में इन दोनों दलों की विचारधारा और कार्यशैली में कोई विशेष अंतर नहीं है। दोनों ही दल राष्ट्रीयकरण और साम्यवाद के प्रसार को रोकने के पक्षधर हैं।
- अमेरिका में दलीय व्यवस्था संगठित नहीं है, और कोई भी दल सदस्यों की नियमित भर्ती नहीं करता। दल के सदस्यों को किसी विशेष सिद्धान्त को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है।



(vi) राष्ट्रवाद और चीनी क्रांति

परिचय

राष्ट्रवाद और चीनी क्रांति ने **आधुनिक चीन की नींव** रखी। 19वीं सदी के अंत में विदेशी हस्तक्षेप और चिंग राजवंश की कमजोरी ने **चीनी राष्ट्रवाद** को जन्म दिया, **1911 की क्रांति** ने चिंग राजवंश को समाप्त कर चीन गणराज्य की स्थापना की। इसके बाद, **राष्ट्रवादी और कम्युनिस्ट शक्तियों के बीच संघर्ष** ने 1949 में **माओ से-तुंग** के नेतृत्व में **पीपल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना** की स्थापना की। इस क्रांति ने **भूमि सुधार और औद्योगिकीकरण जैसे महत्वपूर्ण सुधार किए**, जिससे चीन एक सशक्त और स्वतंत्र राष्ट्र बन सका।



राष्ट्रवाद (Nationalism)

राष्ट्रवाद एक राजनीतिक विचारधारा है जो किसी विशेष राष्ट्र और उसकी संस्कृति, इतिहास, और परंपराओं के प्रति प्रेम और भक्ति को प्रकट करती है। राष्ट्रवाद का मुख्य उद्देश्य एक राष्ट्र की स्वतंत्रता और स्वायत्तता की प्राप्ति और उसकी पहचान की रक्षा करना होता है।

चीनी क्रांति (Chinese Revolution)

चीनी क्रांति कई घटनाओं और आंदोलनों का संग्रह है। यह चीन में 20वीं सदी की शुरुआत से मध्य तक हुई। इसमें मुख्य रूप से दो प्रमुख क्रांतियों का उल्लेख होता है- 1911 की शिन्हाई क्रांति और चीनी साम्यवादी क्रांति (1949) इन क्रांतियों ने चीन के राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक संरचना को पूरी तरह से बदल दिया और उसे एक नई दिशा दी।

राष्ट्रवाद और चीनी क्रांति - अंतर्संबंध :

चीनी क्रांति की सफलता राष्ट्रवाद से काफी हद तक जुड़ी हुई थी। और इसके दो प्रमुख उद्देश्य थे:

- 1 सरदारों द्वारा शासित स्वतंत्र प्रांतों में विभाजित चीन को एकजुट करने के लिए विदेशी साम्राज्यवादियों को उखाड़ फेंकना।
- 2 एक सर्व-समावेशी समाजवादी गणराज्य की स्थापना करना।



माओ से-तुंग और राष्ट्रवाद पर उनके दर्शन का विकास :

समाजवाद अपनाने से पहले **माओ से-तुंग** की पहचान **एक राष्ट्रवादी** के रूप में की गई थी। चीन में तब राष्ट्रवाद और समाजवाद के बीच महत्वपूर्ण संबंध हुआ, जिसने राष्ट्रवाद के व्यापक सिद्धांत के विकास में योगदान दिया।



राष्ट्रवाद का उदय :

- 1. चीनी राष्ट्रवाद की उत्पत्ति :** 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में, चीनी राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इसने चीन को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त कराने और एक मजबूत, आधुनिक राष्ट्र बनाने का लक्ष्य रखा।
- 2. पश्चिमी प्रभाव और सुधार की आवश्यकता :** 19वीं सदी में पश्चिमी शक्तियों ने चीन पर काफी प्रभाव डाला। औपनिवेशिक हस्तक्षेप ने चीन की संप्रभुता को कमजोर किया, तथा चीनी समाज में राष्ट्रीय गौरव और आत्मसम्मान की भावना को गहरा धक्का पहुंचाया।
- 3. राष्ट्रवाद का प्रभाव:** चीनी क्रांति पर राष्ट्रवाद का गहरा प्रभाव पड़ा। 20वीं सदी की शुरुआत में चीनी जनता ने विदेशी नियंत्रण और आंतरिक भ्रष्टाचार के खिलाफ जागरूकता बढ़ाई। यह राष्ट्रवादी भावना 1911 की शिन्हाई क्रांति का प्रमुख कारण बनी, जिसने किंग राजवंश को समाप्त कर दिया और गणराज्य की स्थापना की।

चीनी क्रांति :

- 1. 1911 की शिन्हाई क्रांति:** यह क्रांति चिंग राजवंश को समाप्त करने और गणराज्य की स्थापना का कारण बनी। सन यट-सेन के नेतृत्व में, राष्ट्रीय जनवादी पार्टी (कुओमिनटांग) ने गणराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष किया।
- 2. चीनी गृहयुद्ध:** राष्ट्रीय जनवादी पार्टी और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच संघर्ष ने 1927 से 1949 तक चीनी गृहयुद्ध को जन्म दिया। इस संघर्ष ने चीन के राजनीतिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया।
- 3. 1949 की क्रांति:** माओ से-तुंग के नेतृत्व में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने 1949 में पीपल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना की स्थापना की। यह क्रांति मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा पर आधारित थी और इसका उद्देश्य समाजवादी राज्य की स्थापना करना था।

निष्कर्ष - इस प्रकार चीन को एक सशक्त और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्थापित किया गया।

**To my amazing students, Best of luck for your exam.
May your knowledge shine brightly in the exam hall.**

- Manish Verma